डायरी के कुछ पन्ने

[दूसरी गोलमेज परिषद् में गांधीजी के साथ]

लेखक

घनश्यामदास बिड़ला

सर्वोदय साहित्य माला १०६वां ग्रंथ

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

नवम्बर १९४०   १०००
अप्रैल १९४१   २०००

मूल्य

जिल्द का : सवा रुपया
सादी . बारह आना

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

मुद्रक—
देवीप्रसाद शर्मा,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली

भूमिका

फेडरेशन, जिसका पूरा नाम है Federation of Indian Chambers of Commerce and Industry, भारतीय वाणिज्य-व्यापार की प्रमुख प्रतिनिधि-सस्था है। भारतीय का अर्थ यहाँ यह समझना चाहिए—जिसमे पैसा भारतवासियों का लगता हो और जिसका सचालन भी भारतवासियो के ही हाथ में हो। फेडरेशन एक सघ या महासघ है जिससे देश के विभिन्न भागो की विभिन्न भारतीय व्यापारी सस्थायें सम्बद्ध है। डायरी-लेखक श्री घनश्यामदास बिड़ला इसी फेडरेशन के प्रतिनिधि-स्वरूप लन्दन की दूसरी गोलमेज कान्फ्रेंस मे शरीक हुए थे।

पहली कान्फ्रेंस में, फेडरेशन अपने १९३० के इस निश्चय के अनुसार कोई भाग न ले सका कि जिस कान्फ्रेस में महात्मा गाधी नही जाते या जिसे उनका आशीर्वाद प्राप्त नही होता, उससे फेडरेशन बिल्कुल अलग रहेगा। जब गाधी-ईर्विन समझौते से देश का राजनैतिक वातावरण बदला और महात्माजी के लन्दन जाने की पूरी आशा दीखने लगी तब फेडरेशन दूसरी कान्फ्रेस में शरीक होने को तैयार हुआ।

कान्फ्रेंस मे उसको तीन प्रतिनिधि भेजने का हक़ हासिल हुआ। वह और वह भी सीट—डायरी-लेखक के शब्द में, 'कुर्सियाँ'—चाहता था, मगर लार्ड ईर्विन के समझाने-बुझाने पर तीन से ही सन्तुष्ट हो गया। अपने इन प्रतिनिधियों के नाम उसने बड़े लाट के पास बाकायदा भेज दिये और १४ अप्रैल, १९३१ को उनकी ओर से इन लोगो

की मजूरी भी आगयी।

मगर जब ४ अगस्त को कान्फ्रेंस के मेम्बरो के नाम प्रकाशित हुए तब सबको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि फेडरेशन को तीन की जगह एक ही कुर्सी दी गयी थी और सरकार ने उसके लिए, फेडरेगन के भेजे हुए नामो में से, सिर्फ सर पुरुषोत्तमदास का नाम चुन रखा था।

साफ ज़ाहिर था कि शिमला-शिखर पर, इस बीच मे, बडे लाट तक से वादा-खिलाफी करानेवाली कोई खास हवा चल गयी थी। लदन में तो यह सुनने में आया था कि भारत-मत्री के दफ्तर के दबाव मे पडकर ही भारत-सरकार ने यह उलट-फेर किया था। जो हो, फेडरेशन ने, ऐसी स्थिति मे, कान्फ्रेन्स मे कोई भी भाग लेने से साफ इन्कार कर दिया। उसने अपने प्रस्ताव मे कहा कि हमारी ओर से जायेगे तो तीनों प्रतिनिधि, नही तो एक भी नही। और यह भी ऐलान कर दिया कि फेडरेशन के प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति में, कान्फ्रेस मे कोई समझौता हुआ तो वह भारतीय व्यापारी समाज को मान्य न होगा।

फेडरेशन की जीत रही। अधिकारियो को अन्त मे मजबूर होकर एक को तीन करना पडा और बाकी दो प्रतिनिधियों को भी कुर्सियाँ देनी पडी। १६ अगस्त को फेडरेशन के तत्कालीन अध्यक्ष सेठ जमाल मुहम्मद साहिब के पास वड़े लाट के प्राइवेट सेक्रेटरी का पत्र पहुँचा कि आप और श्री घनश्यामदास बिड़ला दोनों कान्फ्रेस में भाग लेने के लिए निमन्त्रित किये जाते हैं। इस प्रकार डायरी-लेखक को लदन मे कुछ दिन गोलमेज के इर्दगिर्द भी बिताने पडे।

यह उनकी दूसरी यूरोप-यात्रा थी,—जिसका खास उद्देश्य इग्लैण्ड होते हुए अमेरिका जाना था। यह यात्रा उन्हे अब कुछ महीनो के लिए स्थगित कर देनी पडी।

कान्फ्रेस में सरकार ने जो चाहा था, वही हुआ। वहाँ जो दुखदायी दृश्य देखने मे आये, उनका वर्णन करते हुए लेखक ने अपना यह कटु अनुभव प्रकट किया है कि बात बिगाडनेवाले "सब-के-सब सरकार द्वारा मनोनीत" थे। "यदि प्रजा द्वारा मनोनीत किये गये होते तो यह नौबत न आती।" विधान-निर्माण के लिए कान्स्टीटयूएण्ट असेम्बली (Constituent Assembly) जैसी सस्था पर अपनी राष्ट्रीय माँग में, इतना जोर क्यो दिया जाता है, यह लेखक का अनुभव सुनने पर सहज ही स्पष्ट हो जाता है।

डायरी-लेखक का जो भाषण कान्फ्रेंस के खुले अधिवेशन मे हुआ वह स्पष्टवादिता से भरपूर था। उसमे उन्होने इस बात पर पूरा प्रकाश डाला कि प्रस्तावित आर्थिक प्रतिबन्ध भारतवासियो के लिए असह्य क्यो थे। आमदनी का ८० फीसदी से अधिक भाग फौजी खर्च, कर्ज के सूद आदि के लिए इस प्रकार अलग कर दिया गया था कि वह भारत के भावी अर्थ-सचिव की पहुँच से बिल्कुल बाहर था—उसमें मीनमेष करने का उन्हे कोई भी अधिकार न था। कहना चाहिए कि यह सारा हिस्सा खर्च की इन मदो के लिए 'गिरवी' या 'बन्धक' रख दिया गया था। उस भाषण में इस बात पर काफी जोर था कि इग्लैण्ड और हिन्दुस्तान के बीच सबसे पहले इस खर्च की रकम के बारे में समझौता होकर, हिन्दुस्तान का बोझ हल्का होना चाहिए—गिरवी या बन्धक

से इस मुल्क की आमदनी के मुनासिब हिस्से को छुटकारा मिलना चाहिए। भाषण के अन्तिम शब्द ये थे—"कोई भी सरकार किसी देश की सम्मति के बिना उसपर शासन नही कर सकती। अगर अमन-चैन कायम रखना है तो यह जरूरी है कि या तो आप हमारी मर्जी से हमपर हुकूमत करे या हमको अपने ऊपर आप हुकूमत करने दे। इस हालत मे हम आपके दोस्त और साझीदार हो सकते है। अगर आपने इस मौके पर हमसे कोई दोस्ताना समझौता न किया तो यह आपकी भयकर-से-भयकर भूल होगी। मेरे एक अग्रेज दोस्त उस रोज़ मुझसे कह रहे थे कि "१९३० की गोलमेज कान्फ्रेंस मे न आकर तुम लोगो नें बडी भूल की। उस समय मजूर-सरकार की हमदर्दी से तुम लोग काफी फायदा उठा सकते थे।" मालूम नही इसमें कहाँतक सचाई है, मगर मौजूदा सरकार ने यह मौका हाथ से जाने दिया, और हिन्दुस्तान के साथ कोई समझौता न किया तो मेरी समझ से यह उसकी बहुत बडी भूल होगी। मै अपने मुल्क के नौजवानो को अच्छी तरह जानता हूँ। बहुत सम्भव है कि कुछ वर्ष बाद इग्लैण्ड को महात्मा गाधी या भारतीय नरेशो या मुझ-जैसे पूँजीपतियों से समझौता न करके बिल्कुल नये आदमियों से, नयी अवस्थाओं से, नये विचारों से, नयी आकांक्षाओं से निपटना पड़े। इंग्लैण्ड को सावधान हो जाना चाहिए।"

लन्दन से लौटने पर, ब्रिटिश स्वत्वो के सरक्षण के लिए 'समझौता' चाहनेवाले मि० बेन्थल ने, अग्रेज व्यापारियों की एक सभा मे, कान्फ्रेंस की कहानी सुनाते हुए, कुछ ऐसी

बाते कही, जिनसे फेडरेशन के प्रतिनिधियों को बहुत दुख और आश्चर्य हुआ। मि० बेन्थल के इस भाषण की जो रिपोर्ट अखबारो मे छपी, उसका उनकी ओर से कोई खण्डन नही हुआ। इसमें महात्मा गाधी पर कुछ ऐसे दोशारोपण किये गये थे जिनमे सत्य का लेश भी न था। साथ ही कुछ ऐसी बाते थी जिन्हे पढकर किसीको भी यह सन्देह हो सकता था कि फेडरेशन के प्रतिनिधियो या महात्मा गाधी से उन्होने लन्दन में समझौते की जो बात-चीत की, वह कूटनीति मे भले ही शुमार हो, मगर वह चीज न थी जिसका उनकी ओर से बार-बार विश्वास दिलाया गया था। हम पाठको का ध्यान डायरी के मि० बेन्थल-सम्बन्धी भाग की ओर आर्कषित करते है।

फेडरेशन के प्रतिनिधियो ने अपनी कमेटी को जो रिपोर्ट दी उसमे महात्मा गाधी के सम्बन्ध मे ये विचार प्रकट किये थे —

"कान्फ्रेंस के असफल होने का दोष महात्मा गाधी के माथे मढ़ने की चेष्टा की गयी है। इससे बढकर कोई झूठा अपवाद या कलक नही लगाया जा सकता। हम लोगो को लदन मे उनके साथ काम करने का और उनके विचारो से अवगत होने का काफी अवसर मिला। हम लोग अपनी जानकारी से कह सकते है कि मुनासिब शर्तों पर सुलह या समझौता करने के लिए महात्माजी बराबर तैयार थे। वह अपनी माँग मे नरम-से-नरम रहे और समझौते के लिए उन्होंने अपनी ओर से कुछ भी उठा न रक्खा। अपने एक भाषण में उन्होंने अपनी शान्ति-प्रियता का परिचय इन

मर्मस्पर्शी शब्दों मे दिया कि "दिल्ली मे जो समझौता थोड़े समय के लिए हुआ था, उसको मैं स्थायी शान्ति के रूप में परिणत देखना चाहता हूँ, मगर ईश्वर के लिए, ६२ वर्ष के इस जरा-जीर्ण व्यक्ति को एक मौका तो दो। उसको और काग्रेस को, जिसका वह प्रतिनिधि है, अपने दिल मे कोई छोटा-सा कोना तो बख्शो।" मगर कान्फ्रेंस में यह अरण्यरोदन ही रहा, और मि० बेन्थल के शब्दो मे महात्माजी को 'खाली हाथ' लौटना पड़ा।

डायरी कान्फ्रेंस के ऐसे अधिवेशन से सम्बन्ध रखती है जो महात्मा गाधी की उपस्थिति के कारण विश्वविख्यात हुआ—जिसकी बातों मे भारतवासी-मात्र ने खास दिलचस्पी ली। इसके लेखक इसमे वर्णित घटनाओ के अत्यन्त निकट थे, बल्कि जो कुछ हो रहा था उसकी भीतरी जानकारी जैसी उनको थी शायद ही किसी दूसरे को रही हो। जिस इतिहास को उन्होंने अपनी इस डायरी का मुख्य विषय बनाया उसके निर्माण में उनका अपना भी हाथ था। इन सब कारणों ने उनके साक्ष्य मे विशेष प्रामाणिकता ला दी—बराबर के लिए उनके इस बयान को 'काम की चीज़' बना दिया।

ऐसी डायरी का प्रकाशन आज इस आशा और विश्वास से किया जा रहा है कि इसके पन्ने न केवल इतिहास का शोध या अध्ययन करनेवालो के लिए ही उपयोगी होंगे, बल्कि उन लोगो के लिए भी जिनका विषय वर्तमान या आधुनिक राजनीति है।

—पारसनाथ सिंह

गाधीजी जहाज पर चढरहे हैं . लेखक और स्व० सर पट्टणी पीछे चढ रहे है

भूमध्यसागर में

डायरी के कुछ पन्ने

[दूसरी गोलमेज परिषद् में गांधीजी के साथ]

: १ :

२९ अगस्त, '३१

"राजपूताना" जहाज़

बम्बई में आज सबेरे से ही चहल-पहल थी। महात्माजी कुछ काल के लिए भारतवर्ष में न रहेंगे, सबके चेहरे से यही भाव झलक रहा था। मुझे तो सद्भाग्य से ही यह संयोग मिल गया है कि जिस बोट से गांधीजी और मालवीयजी जाते हैं, उसीसे मैं भी जा रहा हूँ। जब जहाज़ में जगह ली थी, तब तो यह निश्चित था कि महात्माजी आर० टी० सी० में नहीं जायँगे, किन्तु विधि ने तो पहले से ही निश्चित कर रखा था कि गांधीजी को विलायत जाना है और 'विधि का रचा को मेटनहारा' ?

बँगले से चलकर बंदर पर पहुँचा तो फोटो लेने-वाले पागल दर्जनों की तादाद में मुझपर टूट पड़े। न मालूम कितने प्लेट उन्होंने बर्बाद किये। २५ से कम तो न थे। स्वदेशी धन को विदेश इस तरह भेजा जाता है! आख़िर मेरे फ़ोटो की कीमत ?

जहाज़ पर सवार होने के थोड़ी ही देर बाद महात्मा गांधी की जयध्वनि से आकाश गूँज उठा। बस, सब लोग समझ गये कि गांधीजी आ रहे हैं। सारे जहाज़ में चहल-पहल मच गयी। क्या हिन्दुस्तानी, क्या अँगरेज़, स्त्री-पुरुष दौड़-दौड़कर मौके के स्थान पर कब्ज़ा जमाने लगे। बन्दर से आधी मील की दूरी तक के सभी मकानों की छतें खचाखच भरी थीं। चारों ओर से जय-जय! जहाज़ के ऊपर पहुँचने में महात्माजी को काफी कष्ट हुआ। मगर अँगरेज़ मल्लाहों ने किसी तरह हाथों की बाड़ बनाकर ऊपर तक पहुँचाया, और सुरक्षित स्थान में खड़ाकर दिया। वहीं से किनारे के लोगों को महात्माजी दर्शन देते रहे। क्या विचित्र दृश्य था! आर० टी० सी० में जो लोग पहले गये थे वे जनता के प्रतिनिधि हैं, या एक मन वज़न का दुबले-पतले शरीरवाला गांधी प्रतिनिधि है, इस बात की गवाही लोगों का भाव दे रहा था। इतने में ही थोड़ी-थोड़ी वर्षा भी होने लगी। मानों इन्द्र भी विदाई के आँसू बहा रहा था। किन्तु लोग अपनी जगह से न हटे। जहाज़ का घण्टा हुआ। फिर दूसरा घण्टा हुआ। तीसरा घण्टा हो जाने पर लोगों को स्मरण हुआ कि आख़िर हमें जहाज़ से उतरना

है। वे किनारे उतरे, मगर आँखें सबकी गांधीजी की ही ओर लगी थीं। वल्लभभाई के चेहरे पर विषाद था। जवाहरलालजी के चेहरे पर मुस्कराहट। पंडितजी अभी पहुँचे भी न थे। सब लोग पूछते थे—"मालवीयजी अभी नहीं आये?" आख़िर ऐन मौके पर पहुंचे। जहाज़ ने लगर उठाया और धीरे-धीरे सरका, तब कहीं पता लगा कि हम लोग जानेवाले हैं। रामेश्वर, ब्रजमोहन रूमाल हिला-हिलाकर संकेत कर रहे थे। पर मैं तो विचित्र दशा में गोते खा रहा था। एक छोटे से दुबले-पतले आदमी ने लोगों को कैसा मोहित कर लिया है, इसी पर विचार कर रहा था। किन्तु जहाज चलने लगा तो याद पड़ा कि जा रहा हूँ। ज्यों-ज्यों जहाज़ और किनारे के बीच का अन्तराय बढ़ता गया, त्यों-त्यों मन तेज़ी के साथ किनारे की ओर दौड़ लगाने लगा। शायद किनारे के लोगों की भी यही हालत थी। आखिर आँखों ने काम देना बन्द कर दिया और लोगों को पहचानना भी मुश्किल हो गया। तब कानों से जयनाद सुनते रहे। अन्त में तो समुद्र का खूं-खूं रह गया। हिन्दुस्तान का तो अब नामोनिशान भी नहीं। चारों तरफ पानी-ही-पानी है और उनके बीच हमारी छोटी-सी दुनिया—"राज-

पूताना" जहाज ! हिन्दुस्तान के हृदय-सम्राट् की ऐति-
हासिक यात्रा का यह दृश्य सचमुच हृदय पिघलाने-
वाला है ।

: २ :

३० अगस्त, '३१

"राजपूताना" जहाज़

जहाज़ पर मर्य्यादा प्रायः भंग हो गयी है। १९२७ में मैं आया था तो कपड़ों का स्वांग रचना पड़ता था। रात के कपड़े, दिन के कपड़े, पूरा झमेला था। घण्टा भर तो प्रायः कपड़े बदलने में ही लगता था। धोती-कुर्ता पहनना तो मानो गुनाह था। अब की बेर यह हाल है कि धोती-कुर्तेवाले जहाज़ पर बेखटके फिरते हैं। न तो कोई पूछनेवाला है, न किसीको संकोच है। मुझे अब मालूम होने लगा है कि अपने धोती-कुर्त्ते छोड़ आया, यह ग़लती हुई। जहाज़ के मुसाफिर, कप्तान वगैरह भी धोती-कुर्तों को बर्दाश्त कर लेते हैं। यों तो उन्हें बुरा ही लगता होगा। पर शिमले का आदेश है कि गांधी के आराम का ध्यान रखो, इस-लिए सब कुछ बर्दाश्त कर लेते हैं।

पंडितजी के लिए चूल्हा अलग बन गया है। गंगाजल भी साथ है। मिट्टी का कनस्तर, स्वदेशी

साबुन, दातौन का बड़ा-सा बंडल। उधर गांधीजी का चर्ख़ा, पींजन, बड़ी-बड़ी विचित्र चीज़ें साथ चल रही हैं। जहाज़वाले भी देखते हैं कि यह शिवजी की बरात अच्छी आयी। आते-जाते तिरछी नज़र डाल जाते हैं, पर ऊपर से पूरा अदब दिखाते हैं।

जहाज़ के चलते ही गांधीजी ने अपना असबाब सँभालना शुरू किया। इस ट्रङ्क में क्या है? उसमें क्या है? यह पूछताछ शुरू हुई। बेचारी मीराबेन तो झट समझ गयीं कि तूफान आनेवाला है। महादेव और देवदास तो बम्बई गांधीजी के साथ ही पहुँचे थे। इसलिए सारे प्रबन्ध का भार मीराबेन के ऊपर ही था। और जहाँ गांधीजी ने हिसाब पूछना शुरू किया, मीरा समझ गयीं कि ख़ैर नहीं है। पहले-पहल तो गांधीजी ने पूछा इस ट्रङ्क में क्या है? मीरा ने कहा—बापू, इसमें आपके कपड़े हैं। गांधीजी ने कहा—मेरे कपड़े? इतने बड़े ट्रङ्क में? मीरा ने कहा—लेकिन यह भरा हुआ नहीं है। गांधीजी—हाँ, तो तुम इसे भर देना चाहती थीं! यह नहीं सोचा कि हिन्दुस्तान में तो मेरे कपड़े बिना ट्रङ्क के ही चलते थे।

मीरा ने ट्रङ्क खोलकर सामग्रियाँ सामने रखीं

तो गांधीजी का चेहरा लाल हो गया। सामान ज्यादा न था; किन्तु एक भी पैसा अधिक खर्च हो, यह गांधीजी को असह्य था। पेटियाँ सारी मँगनी में लायी गयी थीं, किन्तु गांधीजी को सन्तोष न हुआ। पूरा घंटा तो उन्हें अपनी मण्डली को धमकाने में ही लगा। अन्त में तय हुआ कि थोड़ा-सा सामान छोड़कर बाकी अदन से वापस आकर दिया जाय। गांधीजी बोले—"आज तो मैं इस सामान को देखकर घबरा गया हूँ। कागज़ रखने के लिए भी ये लोग पेटी लाये हैं, मानो मैं अब पुरानी आदतों को छोड़नेवाला हूँ।"

पाँच बजे अपने बैठने का स्थान चुनने के लिए गांधीजी छत पर आये। मैंने कहा—"जहाज का अन्तिम हिस्सा तो बहुत हिलता है, इसलिए काफी कष्टप्रद है। एक मिनट भी मुझसे तो यहाँ खड़ा नहीं रहा जाता, इसलिए इसे देखना ही फिजूल है। जहाज के बीच का हिस्सा ही देख लें।" गांधीजी कहने लगे कि इसको भी तो देख लें और मेरे लाख विरोध करने पर भी जहाज़ के अन्तिम हिस्से का एक ख़तरनाक कोना पसन्द किया। मैं तो हक्का-बक्का-सा रह गया। क्या कोई समझदार मनुष्य ऐसी तकलीफ से

भरी हुई निकम्मी जगह पसन्द कर सकता है ? किन्तु—"यस्या जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने—" गांधीजी की विचार-शृङ्खला यह थी कि जो स्थान अच्छा है, वहाँ हमारे बैठने से किसीको कष्ट हो सकता है, अच्छे स्थान में एकान्त भी संभव नहीं—इसलिए यह बुरा स्थान ही हमारे लिए अच्छा है। मैंने कप्तान तक दौड़-धूप की, उनका विचार बदले, इसकी काफ़ी कोशिश की। पर "हज़रते दाग जहाँ बैठ गये बैठ गये!" गांधीजी तो टस-से-मस भी न हुए। आख़िर पण्डितजी ने अपना ज़ोर आज़माना शुरू किया। उन्होंने आग्रह किया कि गांधीजी फ़र्स्ट का टिकिट बदला लें। सन्ध्या-समय घूमते-घूमते मैंने भी थोड़ा आग्रह किया। गांधीजी ने पूछा—तुम क्यों आग्रह करने लगे ? मैंने कहा—"आपने टिकिट तो सेकण्ड का लिया। किन्तु आपकी प्रतिष्ठा के कारण फ़र्स्ट के तमाम हक आपको स्वतः मिल जायँगे। फ़र्स्ट की छत पर कनात लगाकर आपके लिए प्रार्थना-घर बनवा दिया है, क्या यह उचित नहीं कि आप फ़र्स्ट के पैसे ही दे दें ?" गांधीजी ने कहा—नहीं, इस दलील से तो यह सार निकलता है कि हम फ़र्स्ट के तमाम हकों को स्वयं त्याग दें। नतीजा यह हुआ कि

गांधीजी ने फ़र्स्ट की छत पर घूमना उसी समय बन्द कर दिया। प्रार्थना की कनात तो एक ही दिन काम आयी। आज तो उन्होंने प्रार्थना अपने निकम्मे स्थान पर ही की। प्रार्थना करते समय जहाँ गांधीजी ध्यान करते थे, वहाँ मैं यह सोचता था कि भगवन्, प्रार्थना समाप्त हो तो यहाँ से उठूं। बैठनेवाले दो मिनिट में ही आधे बीमार हो जाते हैं। वमन नहीं हुआ, यह ख़ैरियत है। कहते हैं जहाँ चाँद-सूरज की गति नहीं है, वहाँ भगवान् विराजते हैं। हमारे जहाज के बारे में यह कुछ अंश में कहा जा सकता है कि जहाँ भले आदमियों की होश-हवास के साथ गति नहीं है, वहाँ गांधीजी विराजते हैं। कोई मिलनेवाला जाता है, तो एक मिनट से ज्यादा रुकना भी पसन्द नहीं करता। बम्बई से चलते ही समुद्र तूफ़ानी हो गया। इसलिए गांधीजी का स्थान ऐसा रहता है, जैसे हिन्दुस्तान का डोलर-हिंडा।

: ३ :

३१ अगस्त,' ३१

"राजपूताना" जहाज़

पण्डितजी की भी बात सुनिए। आज तीसरा दिन है, पर पण्डितजी की प्राय: एकादशी ही चलती है। बात यह है कि पण्डितजी का रसोइया बीमार है और आटे-सीधे के बक्स का कहीं पता नहीं। पण्डितजी से लाख प्रार्थना की कि महाराज, बोट का चावल-आटा लेना बुरी बात नहीं है; किन्तु पण्डितजी कहते हैं कि भूख लगेगी तब ले लेंगे, अभी भूख नहीं लगी है, तबीयत सुधर रही है। परसों और कल तो थोड़ा-थोड़ा दूध ही लिया। सामान की पेटी के लिए सारा जहाज़ छान डाला, किन्तु वह भी ऐसी ग़ायब हुई कि न पूछिए। पण्डितजी खुद तो खाते नहीं, अपने रसोइये से कहते हैं—बैजनाथ! थोड़ा खा लो। बैजनाथ क्या खाये? पेटी तो ब्रह्मलोक चली गयी और जहाज़ का सामान अभी तक पण्डितजी ने लेना स्वीकार नहीं किया। पर आज पण्डितजी को मना लिया है और

जहाज़ के सामान से रसोई बनेगी। पण्डितजी कुछ कमज़ोर हो गये हैं लेकिन वैसे प्रसन्न हैं। समुद्र के तूफ़ान के कारण दो दिन तक कुछ व्यथित रहे। समुद्र कुछ शान्त हो रहा है। शाम को रसोई भी बनेगी।

पण्डितजी ने आने में काफी कष्ट उठाया है। पण्डितजी की प्रकृति के मनुष्य को ऐसे सफर में बहुत कष्ट है, किन्तु देश के लिए पण्डितजी सब कुछ सहन कर लेते हैं। सच पूछिए तो पण्डितजी की दृष्टि में यह जहाज़ नरक है, इंग्लिस्तान रौरव है। आज कहते थे—तुमने अच्छी-सी केबिन मेरे लिए सुरक्षित की, किन्तु वह है तो केबिन (कोठरी) ही। यदि स्वदेश का काम न हो, तो पण्डितजी ऐसा सफर करने की स्वप्न में भी इच्छा न करें। पण्डितजी में प्रेम और आशावाद की कमी नहीं। पेटी ग़ायब हो गयी, सारा जहाज़ छान डाला, किन्तु पण्डितजी अब भी कहते हैं कि पेटी जरूर मिलेगी, गायब कैसे हो सकती है?

इसका उत्तर मैं क्या दूँ? गोविन्दजी ने कल और आज पेड़ों से ही काम चलाया है। रामेश्वरजी ने तो कहा था कि पेड़े ज्यादा ले लो, मगर मुझे क्या ख़बर थी कि ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होनेवाली है!

: ४ :

१ सितंबर, '३१

"राजपूताना" जहाज़

समुद्र आज बुधवार को शान्त हुआ है। सूरजिया तो अब भी बीमार है। पारसनाथजी ने आज होश सँभाला है। मैंने एक बेला भोजन नहीं किया। गांधीजी मज़े में हैं। पण्डितजी की रसोई बनने लगी है—जहाज़ के सामान से ही। गोविन्दजी को पेड़ों से कुछ तकलीफ़-सी हुई। महात्माजी की प्रार्थना रोज़ सुबह-शाम होती है। हिन्दुस्तानी आते हैं, अंग्रेज़ दूर से ही नज़र बचाके देखते रहते हैं। आज रात को अदन पहुँच जायँगे। पण्डितजी कहते थे कि "जहाज़ कैदखाना है। देखो, कैसी लीला है! हम पैसे भी देते हैं और कैद में भी रहते हैं।" कल बेचैन होकर कहने लगे—

सीतापति रघुनाथजी तुम लगि मेरी दौर,
जैसे काग जहाज को सूझत और न ठोर।

और ठौर यहाँ कहाँ सूझे!

: ५ :

३ सितम्बर, '३१

"राजपूताना" जहाज़

अदन अभी छोड़ा है। अदन में महात्माजी का खूब स्वागत-सत्कार हुआ। सम्मानपत्र दिया गया; उन्होंने जवाब दिया। स्पीच हिन्दुस्तान के अख़बारों में छपी होगी। महात्माजी को ३२५ गिन्नियाँ भेंट की गयीं। सत्कार में अरब, यहूदी, हिन्दुस्तानी सभी शामिल थे। हज़ारों आदमियों की कतार रास्ते में खड़ी हो गयी, जो अपनी अरबी भाषा में सत्कार-सूचक नारे लगा रही थी। जिस गाड़ी में महात्माजी थे, उसमें सरोजिनी नायडू, सर प्रभाशंकर पट्टणी और मैं था। कोई-कोई अरब तो पट्टणीजी को ही गांधीजी समझ बैठते थे, क्योंकि पट्टणीजी की सफ़ेद दाढ़ी, सफेद अंगरखा, सफेद साफ़ा सचमुच महात्मापन-सा ला देता है। मीटिंग में भी एक हज़ार मनुष्य थे। अधिक-तर हिन्दुस्तानी ही थे।

पंडितजी के लिए यहाँसे आटा-सीधा और दो

घड़े पानी के ले लिये गये हैं। हमलोगों ने मज़ाक किया कि पंडितजी के गंगाजल के घड़े अब अरब के पानी से भरे जायँगे, और अरब का पानी पीकर पंडितजी को शौकतअली का साथ देना होगा। किन्तु पंडितजी कहते हैं कि पानी का विष सुबह-शाम की सन्ध्या से धो डालूँगा !

× × × ×

महात्माजी लन्दन पहुँचते ही क्या करेंगे, यह जानने की सबको उत्सुकता है। आर० टी० सी० में करीब १०० मेम्बर होगये। ऐरे-गैरे नत्थू खैरे, सभी इसमें शामिल हैं। यह हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियों की कान्फ्रेंस तो है नहीं, गांधीजी को छोड़ प्रतिनिधि कहे जानेवाले सज्जन सारे-के-सारे मनोनीत हैं, चुने हुए नहीं। कुछ अच्छे हैं, तो बहुत से रद्दी हैं। असल में तो ये सब-के-सब सरकार के प्रतिनिधि हैं। ऐसी हालत में अकेले गांधीजी क्या कर सकेंगे ? और बहस में भी सरकारी हाँ में हाँ मिलानेवाले खैरख्वाहों की आर० टी० सी० में कहाँ कमी है ? ऐसी अवस्था में वहाँके लोग सहज ही कह सकते हैं—गांधीजी, आप ठीक कहते हैं, मगर आपके मुल्क के लोग सहमत नहीं हैं, इसलिए आपकी बात कैसे मान ली जाय ?

जहाज पर गाधीजी . लेखक के साथ विनोद करते हुए

पूज्य मालवीयजी और मौलाना शौकत अली

ऐसी स्थिति अवश्य ही समय की बर्बादी करनेवाली होगी। न कुछ काम ही बनेगा। इसलिए निश्चय ही गांधीजी ऐसे झमेले में न पड़ेंगे। "गढाँ गजा मढाँ जोगी!" जबतक गांधीजी भी अपनी मढ़ी में बात न करेंगे तबतक कोई सुननेवाला नहीं। इसलिए विचार इस तरह से है कि आर० टी० सी० तो हाथी के दाँत की तरह शोभा बढ़ाती रहे और गांधीजी खाने के दाँत की तरह मन्त्रिमण्डल एवं वहाँके नेताओं से अलग मंत्रणा करें, उन्हें यहाँकी हालत समझावें, वहाँ की जनता को उकसावें और इस तरह किसी निर्णय पर पहुँचें। यदि वहाँका मंत्रिमण्डल अलग बात करने की इच्छा प्रकट न करे, तो गांधीजी फेडरल कमेटी में अपना वक्तव्य सुना देंगे और कहेंगे, मुझसे बहस करनी हो तो करो। इतने पर भी यदि गांधीजी को सब धान बाईस पसेरी बनाने की चाल रही तो गांधीजी तुरन्त ही वापस चले आयँगे।

मेरा अपना मत है कि जाते ही गांधीजी वापस आने का निर्णय सुना देंगे। मंत्रिमण्डल गांधीजी से अलग मंत्रणा करेगा और शेष में गांधीजी ही आर० टी० सी० बन जायँगे।

× × × ×

फेडरेशन की ओर से सरकार सर पुरुषोत्तमदास को और मुझको मनोनीत करना चाहती है, ऐसा गांधीजी से शिमले में कहा गया। मैंने सर पुरुषोत्तम-दास से बम्बई में ही कह दिया था कि या तो तीनों जायँगे या बिल्कुल न जायँगे। गांधीजी ने बम्बई पहुँचते ही वाइसराय को एक ज़ोरदार चिट्ठी लिखी है। मेरा ख़याल है कि गांधीजी के पैर जम गये तो तीनों बुला लिये जायँगे। वर्ना एक भी नहीं।

: ६ :

४ सितबर,' ३१

"राजपूताना" जहाज

कल गांधीजी से फिर आर० टी० सी० के काम के सबंध में चर्चा छेड़ी। मैंने आश्चर्य प्रकट किया कि "सरकार आपको क्या समझकर बुला रही है? आप क्या मॉगनेवाले हैं, यह तो सरकार जानती है। करॉची का प्रस्ताव भी सामने है। फिर भी आपको बुलाती है, इसके यह माने हैं कि आपकी मॉग पूरी होनेवाली है।" गांधीजी ने कहा, "मैंने तो कोई बात छिपाकर नहीं रखी है। इर्विन से समझौता हो चुका, उसके बाद रात को ८ बजे इर्विन से मैंने कहा—देखो, मुझसे समझौता करते ही मुझे लंदन क्यों भेजते हो? मेरी मॉग तो जानते हो। वह तुमसे पूरी होनेवाली नहीं है, इसलिए मुझे भेजने से फायदा?" इर्विन ने कहा कि तुम्हारी मॉग कुछ भी हो, तुम न्याय-मार्ग पर ही चलोगे, ऐसा मानकर तुमसे जाने का आग्रह करता हूॅ। फिर मैंने चर्चा

छेड़ी कि हाँ, माँग किस तरह रखी जाय। गांधीजी ने कहा, "ग्रामीण की तरह सीधी-सादी भाषा में। यदि वहाँ कोई लंबी-चौड़ी बातें करेगा, राजबन्धारण की बारीकियों की बहस करेगा, तो मैं कह दूँगा कि मैं तो मूर्ख हूँ, ये बातें नहीं समझता। किन्तु मैं फलाँ-फलाँ बात चाहता हूँ और मुझे ये दे दो। यदि मेरी बात कोई सुनना नहीं चाहेगा तो मैं कह दूँगा, मुझको क्यों बैठाके रखते हो, वापस हिन्दुस्तान भेज दो।" मैंने पूछा—वापस आने के पहले आप वहाँ सार्वजनिक व्याख्यान तो देंगे ही? महात्माजी ने कहा—"वह भी मैकडानल्ड या बाल्डविन चाहेगा तो ही, नहीं तो बन्द मुहँ वापस चला जाऊँगा। मेरा स्वभाव यही है कि जिसके यहाँ रहना, उसका गुलाम बनकर रहना। आख़िर उनका महमान बनके जाता हूँ और जबतक वहाँ रहूँगा, उनको क्षोभ हो, ऐसा कोई काम नहीं करना चाहता।" फ़ौज और अंग्रेज़ व्यापारियों के स्वत्वों के बारे में भी काफी बहस हुई। हर बात इनकी निराली है। हम लोग हर बात को सांसारिक दृष्टि से देखते हैं। यह तात्विक और धार्मिक दृष्टि से देखते हैं। १००-२०० साल भी लग जायँ तो चिन्ता नहीं, किन्तु स्वराज्य नहीं, रामराज्य ही चाहिए। बारीकी

के साथ अध्ययन करता हूँ, तो ऐसा पता चलता है कि इनकी माँग जितनी ही बड़ी हो, उतनी ही उसमें कमी करने के लिए गुंजाइश है। समझाने के लिए यों कहना चाहिए कि १ मन मक्खन निकाले हुए दूध की अपेक्षा यह १ सेर मक्खनवाला दूध लेना पसन्द करेंगे। तादाद शायद घटा देंगे, किन्तु किस्म नहीं घटायेंगे। मैंने कहा कि अध्ययन कर लीजिए, नहीं तो कहीं बात बिगड़ जायगी। किन्तु गांधीजी कहते हैं कि "आर० टी० सी० में अबतक क्या हुआ, यह मैंने आजतक नहीं पढ़ा है, अब पढ़ लूँगा। विद्या मेरा बल नहीं है, न मुझे बहस करनी है। मुझे तो अपना दुःख रोना है, इसमें विद्वत्ता की कौनसी बात है?" यह है भी सच, क्योंकि रोना और हँसना स्वाभाविक होता है। रोने में विद्वत्ता नाटकवाले ही दिखाते हैं। गांधीजी तो स्वाभाविक रुदन करना चाहते हैं।

इधर पंडितजी मुझसे कहते हैं कि अमुक विषय का अध्ययन करो, अमुक इतिहास को देख लो, अंग्रेजों की करेंसी-नीति का इतिहास तैयार कर लो। मालवीयजी अनेक अस्त्र-शस्त्रों से लड़ेंगे, गांधीजी केवल एक ही बाण से। मालवीयजी कहते हैं, वहाँ

प्रचार-कार्य्य करेंगे। गांधीजी कहते हैं, प्रचार भी हमारे दुश्मनों की आज्ञा होगी, तभी करेंगे। बिल्कुल नया ढंग, नया विचार, नया तरीक़ा है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि लंदनवाले भी अचरज करेंगे कि कैसे आदमी से पाला पड़ा है!

कल लिखते-लिखते गाँधीजी का दाहिना हाथ बिल्कुल बेकार हो गया। अब बायें से लिखते हैं। रोज़ छः मील घूम लेते हैं। दूध १ सेर लेने लग गये हैं। गांधीजी कहते थे, चर्चिल से लंदन में अवश्य मिलना है; क्योंकि वह दुश्मनी रखता है, गालियाँ देता है। 'बर्नार्ड शॉ से मिलेंगे क्या?' यह पूछने पर कहा कि उससे क्या मिलेंगे!

: ७ :

५ सितम्बर, '३१

"राजपूताना" जहाज

भोपाल ने महात्माजी को बुलाकर कहा कि हिन्दू-मुसलमान-समस्या सुलझाने के लिए आप पृथक् निर्वाचन स्वीकार कर लें। महात्माजी ने कहा कि न तो मुझे पृथक् निर्वाचन से शिकायत है न संयुक्त निर्वाचन का मोह है, किन्तु मै अंसारी के विना कुछ भी न करूँगा। कहते थे, नवाव को यह बुरा-सा लगा। गांधी जी ने कहा कि अपने मित्रों से मै हर्गिज़ वेवफाई नहीं करूँगा। अंसारी के पीठ-पीछे मै कोई निर्णय नहीं करना चाहता। भोपाल ने कहा कि अंसारी को कैसे बुलावें? महात्माजी ने कहा कि जाकर उद्योग करो, मै तो कर ही रहा हूँ।

दो घंटे तक फिर मेरे और महात्माजी के बीच निजी व राजनैतिक वातें हुई। मेरा तो यह अनुमान है कि महात्माजी की माँग तो पूरी होनेवाली नहीं है, किन्तु इतना मिल जायगा, जिससे अन्य लोग संतुष्ट

हो जायें। महात्माजी कहते हैं, यह भी अच्छा है। कहते थे, मेरी दूसरी लड़ाई ज़मींदारों, धनिकों व राजाओं से होगी, किन्तु वह लड़ाई मीठी होगी।

रात की प्रार्थना में अंग्रेज़ भी आते हैं। अधिक नहीं सिर्फ ५–७। एक मुसलमान ने पूछा—'प्रार्थना से फ़ायदा ?' महात्माजी ने कहा—"मुझमें कुछ अक़्ल मानते हो, तो समझ लो कि लाभ के लिए ही प्रार्थना करता हूँ।" महात्माजी ने बताया कि उन्हें न ईश्वर में विश्वास था, न प्रार्थना में और पीछे उनको इसका ज्ञान हुआ। अब यह हाल है कि उनके शब्दों में "मुझे रोटी न मिले तो मैं व्याकुल नहीं होता; पर प्रार्थना के बिना तो पागल हो जाऊँ।" उन्होंने कहा कि "मेरा सारा-का-सारा जीवन प्रार्थनामय ही है और इसका सुख इस मार्ग में जाने से ही अनुभव हो सकता है। बुद्ध, ईसा, मुहम्मद तीनों ने प्रार्थना की सार्थकता स्वीकार की है। मैं ईश्वर का दर्शन नहीं करा सकता। ईश्वर अनुभवगम्य है इसलिए अनुभव से ही जाना जा सकता है। प्रार्थना-द्वारा उसका अनुभव होता है। जो अनुभव लेना चाहता है, जिसे शान्ति की आवश्यकता है, वह प्रार्थना करे।"

६ सितम्बर, '३१

"राजपूताना" जहाज

आज रविवार को जहाज़ के गिर्जे में प्रार्थना थी। कप्तान ने महात्माजी को न्यौता दिया था। पंडितजी और हम भी गये थे। भजन, ध्यान, गुण-गान होता रहा। पंडितजी का हाथ में बाइबिल लेकर ईसाइयों के साथ ध्यानावस्थित होना विचित्र था। पंडितजी को जो कोई लकीर का फकीर बताता है, वह मूर्ख है। पंडितजी अरब का पानी पी सकते हैं, गिर्जे में प्रार्थना कर सकते हैं, फिर भी परम सनातनी हैं, क्योंकि उनके हृदय में ईश्वर विराजमान है। जो हो, पंडितजी का बाइबिल हाथ में लिये हुए ध्यानमग्न होना, यह दर्शन दुर्लभ है।

गांधीजी को कप्तान ऊपर ले गया और वहाँ जहाज़ का संचालक चक्कर उनके हाथ में देकर उनसे चलवाता रहा। किसीने मजाक में कहा कि हिन्दुस्तान के जहाज का गांधीजी संचालन कर रहे हैं।

स्वेज़ नहर और पोर्ट सईद में अरब लोग आयेंगे और गांधीजी का सत्कार होगा। स्वेज़ में प्रवेश होते ही जाड़ा शुरू हो गया। कल तक तो बेहद गर्मी थी।

७ सितम्बर, '३१

"राजपूताना" जहाज

स्वेज़ नहर पहुँचने पर काफी चहल-पहल मच गयी। जहाज़ पर मुसाफ़िरों की डाक्टरी ली गयी। परीक्षा का तो केवल नाम था। डाक्टर मिस्र-सरकार की ओर से आया था, वह मुसाफ़िरों को केवल देख लेता था और पास कर देता था। अन्त में गांधीजी की पार्टी आयी, तो डाक्टर उठ खड़ा हुआ और हाथ मिलाकर कहने लगा कि मेरी किताब में आप अपने हाथ से दो शब्द लिख दें। इस तरह गांधीजी की शारीरिक परीक्षा समाप्त हुई। इसके बाद जहाज़ पर मिस्र के राष्ट्रीय नेता, अख़बारनवीस और फोटोग्राफर पहुँचे। प्रायः लोग गांधीजी से हाथ मिलाकर उनके हाथ चूमते जाते थे। जहाज पर बड़ी भीड़ हो गयी। जहाज़ छूटने का समय आया, तब बड़ी मुश्किल से लोगों को किनारे उतारा। चित्र उतारनेवालों ने तो ज्यादती शुरू कर दी। एक क्षण गांधीजी को आराम

से नहीं बैठने दिया। जिधर मुहँ फेरें, उधर ही चित्र-वाले अपना चित्रयंत्र लिये झपटने को तैयार। कम-से-कम २००-३०० चित्र लिये होंगे। लंदन के "डेली टेलिग्राफ" का प्रतिनिधि भी आया था। उसने भी बहुत-से प्रश्न किये। अन्त में जहाज़ चला। कुछ प्रतिनिधि तो साथ हो लिये, जो रात भर सफ़र कर सुबह पोर्ट सईद में उतरे।

रात की प्रार्थना के समय मिस्र के बहुत-से प्रतिनिधि प्रार्थना में भी शरीक हुए। एक जर्मन ने अहिंसा के संबंध में महात्माजी से प्रवचन करने को कहा, जिसपर महात्माजी ने आध घंटे तक अत्यन्त सुन्दर प्रवचन किया। मिस्रवाले उसे अपनी भाषा में लिखते जाते थे। जबतक महात्माजी सो न गये, तबतक महात्माजी की हर बात को, हर क्रिया को मिस्रवाले नोट करते रहे। मैंने उनसे मिस्र का हाल पूछा। मालूम हुआ कि मैं पिछली बार आया था उसके बाद उन्होंने कोई उन्नति नहीं की है। दृढ़, नि:स्वार्थ नेताओं की कमी है, तो भी नहस पाशा का काफी आदर है। नहस पाशा ने महात्माजी को प्रेम-भरा एक स्वागत का तार भी भेजा है और लौटती बेर काहिरा पधारने की प्रार्थना की है।

सुबह पोर्ट सईद में भी काफ़ी लोग आये। शौकतअली पिछले जहाज़ से उतरकर मिस्र में और फिलस्तीन में भ्रमण कर रहे थे। वह भी हमारे जहाज में आज सवार हो गये हैं। सुना है कि वह मुस्लिम मुल्कों में मुसलमानों का सगठन करने के लिए दौरा करने गये थे। गांधीजी की निन्दा की और इधर के मुसलमानों के साथ ऐक्य करने के लिए प्रयत्न किया। मिस्रवाले कहते थे कि इनका कहीं स्वागत नहीं हुआ। नहस पाशा ने तो कुछ खरी बातें भी सुना दीं। इस तरफ के मुसलमान राष्ट्रवादी हैं! मजहबी पागलपन उनमें नहीं है। इसलिए मौलाना साहब का रंग फीका ही रहा।

पंडितजी के विषय में यहाँ छपा है कि पंडितजी कीचड़ की एक मटकी लाये हैं और रोज़ कीचड़ का एक बुत बनाकर पूजा करते हैं। पीने का पानी गगा का आता रहेगा, जिसका कुल खर्च १५,०००) बैठेगा, जो उनके एक धनी मित्र ने दिया है।

स्वेज के किनारे-किनारे कहीं-कहीं अरब लोगों की भीड़ मिलती थी, जो चिल्लाकर महात्माजी का स्वागत करती थी।

पोर्ट सईद में लोग महात्माजी के लिए फल-फूल

लाये थे, जिनमें ताज़ा आम और खजूर भी थे। आम उतने स्वादिष्ट नहीं होते, जितने अपने यहाँके, किन्तु खजूर देखने में अत्यन्त सुन्दर थे—खाने में भी होंगे।

: १० :

९ सितंबर,'३१
"राजपूताना" जहाज

अभी-अभी मौलाना मुझसे बातें कर गये हैं। मैंने पूछा कि जनाब की सेहत का क्या हाल है? कहने लगे—'ज़िन्दा तो हूँ।' मैंने कहा कि "आप आ गये यह खुशनसीबी है। अब लंदन पहुँचने से पहले इस झमेले को तय कर लीजिए; वर्ना दोनों क़ौमों की बर्बादी होनेवाली है।" मौलाना ने कहा—"छोटा-सा मसला है, गांधीजी के हाथ में है।" मैंने कहा कि "सब कुछ आपके हाथ में है। नवाब साहब भी साथ हैं, अंसारी को बुलवा लें और बैठकर तसफिया कर लें।" पर होना-जाना कुछ है नहीं।

भोपाल ने फिर गांधीजी को बुलवाया। शौकतअली भी मौजूद थे। ४ घंटे तक बातचीत हुई, पर कोई नतीजा न निकला। महात्माजी ने पूछा कि तुम जो कुछ कहते हो उसे मै मान भी लूँ, तो तुम्हारा रुख़ लंदन में राष्ट्रीय माँगों के प्रति क्या होगा? शौकत-अली ने कहा कि मै तो सरकार का ही साथ दूँगा।

दूसरे दिन मालवीयजी को भी भोपाल ने बुलवाया। आर० टी० सी० में मालवीयजी का क्या रुख़ रहेगा, इसीकी चर्चा थी। पंडितजी ने कह दिया कि "जीवन-मरण का प्रश्न है, मैं लंदन इसलिए नहीं आया कि पौने सोलह आना लेकर जाऊँ। गांधीजी का हर्गिज़ साथ न छोड़ूँगा।" भोपाल ने कहा—'फिर तो बात टूटेगी।' पंडितजी ने कहा कि, चाहे जो हो।

लंदन से एण्डरूज़ का तार आया है कि सरकार की राय है कि महात्माजी फॉकस्टन (लंदन से ८० मील पर एक शहर) में उतरकर वहींसे बजाय रेल के मोटर में लावें। महात्माजी ने तार दे दिया कि मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लंदन में बहुत भीड़ होने की संभावना है। सरकार नहीं चाहती कि ऐसा स्वागत हो, इसीलिए यह चाल है।

सप्रू का भी तार आया है कि रविवार १३ की रात को आपको प्रधान एवं अन्य प्रतिष्ठित आदमियों से मिलना है। महात्माजी कहते थे कि उसी रात को मैं तो अपना दाँव फेंक दूँगा और फिर आवश्यकता होगी तो दूसरे स्टीमर से ही लौट आऊँगा। उनके स्वागत को रोकने के लिए उन्हें मोटर द्वारा बुलाया गया है, इससे तो मुझे नीयत साफ नहीं दीखती।

श्री महादेव देसाई : लेखक : श्री देवदास गाधी

गाधीजी सरोजिनी नायडू के साथ अपने दफ्तर से परिषद् मे जाते हुए

: ११ :

११ सितंबर, '३१

ट्रेन में

आज सुबह मारसेल्स पहुँचे। वही पुरानी बात। सैकड़ों चित्र खींचनेवाले अपने यंत्र लिये और बीसों पत्र-प्रतिनिधि मौजूद थे। स्टीमर पर आने की इजाजत नहीं थी। तो भी भीड़ काफ़ी थी। लंदन, अमेरिका, जर्मनी, नारवे आदि के पत्र-प्रतिनिधि ख़ूब आये थे। सबने भिन्न-भिन्न प्रश्न किये। लंदनवाले तो छिद्रान्वेषण करने को ही आये थे, और ख़ूब झूठी-मूठी ख़बरें बनाकर भेजते हैं। मिस्र से तो एक फ़ौजी अफसर ने महात्माजी को एक चोली भेजी है और कहा है कि तुम इसे पहन लो। महात्माजी ने उसे रख लिया है।

११ बजे महात्माजी जहाज से नीचे उतरे और शहर में फ्रांस के छात्रों ने जहाँ मीटिंग की थी, वहाँ गये। बीच में जहाँ-जहाँ गाड़ी रुकती, वहाँ-वहाँ लोगों की भीड़ जमा हो जाती, और 'गांधी चिरजीवी हो'

की ध्वनि होती। लोगों को गांधीजी के दर्शन का काफ़ी कौतूहल था। मीटिंग में बहुत आदमी नहीं थे। प्रवेश-पत्र के बिना सभा-भवन में प्रवेश निषिद्ध था, किन्तु बाहर ख़ासी भीड़ थी। यहाँ के सार्वजनिक उत्सवों में चित्र-यंत्रवालों और पत्र-प्रतिनिधियों की बहुतायत रहती है। सो यहाँ भी थी। यों कहना चाहिए कि गांधीजी के रोज़ के चित्रों का औसत क़रीब २०० पड़ जाता है। और १०–१५ पत्र-प्रतिनिधि वक्तव्य ले जाते हैं। पत्र यहाँ व्यापार की दृष्टि से ही चलाते हैं और जो प्रतिनिधि आते हैं, वे सच्ची ही खबरें नहीं भेजते। झूठ तो प्रायः सभी लिखते हैं; किन्तु जो मित्र हैं वे भी अच्छी बातें बनाके लिखते हैं। उदाहरण के लिए, एक अमेरिकन पत्र-प्रतिनिधि ने हाल में लिखा कि गांधीजी इतने दयालु हैं कि पास में रहनेवाली बिल्लियों को भी साथ में सुला लेते हैं। एक अंगरेज़ पत्रकार ने, जो विरोधी दल का है, लिख मारा कि "गांधीजी जहाँ जाते हैं, अंगरेज़ों को गालियाँ देते हैं। अबतक इनका कहीं सम्मान नहीं हुआ, इसलिए इनका चेहरा उतर गया है। क्रोध से भरे रहते हैं। विलायती कपड़ों का ही उपयोग करते हैं, देशी तो केवल दिखाने के लिए हैं," इत्यादि,

इत्यादि। यह पत्रकार साबरमती-आश्रम में कुछ दिन ठहरा था। वहाँ इसकी बीमारी मे गांधीजी ने अपने हाथ से इसकी सेवा की थी। मारसेल्स से जब चले तो दसों पत्रकार साथ में ही गाड़ी मे बैठ गये। उनमें यह भी था। गांधीजी ने उसे अपने डिब्बे में बुलाया और खूब डाँटा। वह भी शर्म के मारे बर्फ तो हो गया, पर अपनी आदत से शायद बाज न आयेगा।

: १२ :

१२ सितबर, '३१

लन्दन

पेरिस गाड़ी सुबह ६ बजे पहुँची। वहाँ भी वही भीड़, वही चित्रवाले, वही प्रेस-प्रतिनिधि !

११ बजे गाड़ी बूलों पहुँची। यहाँ से इंग्लिश चैनल पारकर हम लोग १ बजे फ़ॉकस्टन में भी खूब भीड़ थी, किन्तु पुलिस के प्रबन्ध के कारण कोई जहाज़ तक पहुँच नहीं पाता था। यहाँ दो सरकारी गाड़ियाँ आयी थीं। एक में गांधीजी बैठ गये, एक में मालवीयजी और मैं। पर पुलिस ने ऐसा जाल रचा था कि दोनों गाड़ियों को शुरू से ही अलग-अलग रास्तों से लन्दन को रवाना किया। लन्दन के निकट पहुँचने पर पंडितजी ने गाड़ीवान से कहा कि 'मुझे पेशाब करना है', पहले मुझे आर्यभवन ले चलो। गाड़ीवान ने कहा कि "महाशय, मुझे हिदायत है कि सीधे आपको सभास्थल पर ले जाऊँ। (पेशाब रास्ते में ही कहीं करा सकता हूँ) मैं आर्यभवन नहीं जा

सकता।" मुझे ऐसा मालूम हुआ कि हमलोग क़ैदी हैं। हमें कैसा स्वराज मिलनेवाला है, इसकी कल्पना इस स्वागत से ही की जा सकती है। हज़ारों आदमी विक्टोरिया स्टेशन पर, यह जानते हुए भी कि गांधीजी रेल से नहीं आयेंगे, जमा थे और यद्यपि वर्षा हो रही थी, फिर भी हज़ारों आदमी सभाभवन के बाहर गांधीजी की बाट जोह रहे थे।

यह जान लेना आवश्यक है कि इंग्लिस्तान भी एक नहीं है। एक इंग्लिस्तान है दीन-दुखियों का, ग़रीब साधारण जनता का, दरिद्रनारायण का—जो गांधीजी का स्वागत कर रहा है, जिसे न हिन्दुस्तान से द्वेष है, न जिसका यहाँ कोई चलन है। दूसरा इंग्लिस्तान है ठाकुरों का, जो हुकूमत करते हैं और जिनके हाथ में ही सत्ता है। यों कहा जा सकता है कि यदि इस श्रेणी के दस आदमी भारत को स्वराज देना चाहें तो दे सकते हैं। जो गांधीजी का 'हुर्रे हुर्रे' करके स्वागत करते हैं। वे हज़ारों होने पर भी पंगु हैं। राज अब भी यहाँ ठाकुरों का ही है। कहने के लिए ही मज़दूर-पार्टी है और मजदूर-सरकार थी। मज़दूर-सरकार ने भी जब चीं-चपड़ की तो सेठों ने उधार देने से इन्कार कर दिया, जिससे मैकडानल्ड

साहब को होश सँभालना पड़ा। 'गॉव राम' का स्वागत ठीक है, पर ठाकुरों की नीयत अच्छी नहीं।

सभा-भवन में १५०० के लगभग आदमी थे, जिनमें ६०० के क़रीब देशी थे। स्वागताध्यक्ष का व्याख्यान अच्छा था, किन्तु गांधीजी का भाषण तो अपूर्व था। लोग बिल्कुल मोहित हो गये। बैठे-बैठे हज़ारों हैट-धारियों के बीच कमली ओढ़े गांधीजी का प्रवचन ऐसा हुआ मानो अँगरेज़ों का ईसामसीह बोल रहा हो। गांधीजी ने कहा, "तुम्हारी सरकार इस समय अपने आय-व्यय का हिसाब बराबर कर रही है, इसलिए बड़ी व्यस्त है, किन्तु जबतक हमारा हिसाब बराबर न करोगे, तबतक तुमने कुछ नहीं किया, ऐसा समझना होगा। मैं देश-भक्त हूँ, किन्तु मेरी देश-भक्ति जीव-भक्ति है। मैं सबका भला चाहता हूँ।" इन बातों पर तालियों की गड़गड़ाहट हुई।

स्वागत के बाद गांधीजी अपने डेरे गये, जो मज़-दूर-मुहल्ले में है। पंडितजी आर्य-भवन में आ गये। सभा-भवन से निकले, तो पंडितजी गद्गद हो गये थे। एकान्त में मुझसे कहते थे कि "गांधीजी के शरीर की मुझे बड़ी चिन्ता है। यह कपड़े नहीं पहनते, कहीं इनको कुछ हो न जाये। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ

कि रोग हो तो मुझे हो, मौत आये तो मुझे आये।" मैंने कहा कि पंडितजी, आप अपनी ही चिन्ता करें, इनकी नहीं। पंडितजी बम्बई छोड़ने के बाद काफी दुर्बल हो गये हैं और ढीले होते जाते हैं। इनके शरीर की मुझे तो बड़ी चिन्ता है।

: १३ :

१५ सितबर, '३१

लन्दन

गांधीजी का स्थान बहुत छोटा है, आराम भी नहीं है, किन्तु लोग प्रेम से उनकी सेवा कर रहे हैं। बिना तनख्वाह के नौकर हैं। अख़बारवाले बिना पैसे लिये अख़बार दे जाते हैं। सैकड़ों आदमी मकान के सामने खड़े जय-जयकार करते रहते हैं।

आज रात को प्रधानमंत्री से बातें होंगी और शायद कल तक नाड़ी का पता चल जाये।

: १४ :

१५ सितंबर, '३१

लन्दन

आज शाम को भोजन के बाद हम लोग किंग्सले हाल पहुँचे। मुझे खासकर तीन बातों के सम्बन्ध में महात्माजी का विचार जानना था। पहला प्रश्न तो यह था कि यहाँ से हट चलने की राय अब होती है क्या? देवदास ने कल टेलीफोन किया था कि बापू कुछ-कुछ स्थान-परिवर्तन के पक्ष में हो चले हैं और सम्भव है कि आर्य-भवन में धूनी रमा दें। किंग्सले हाल आना-जाना आसान काम नहीं है। भारतवासी-मात्र चाहते हैं कि महात्माजी के और उनके बीच इतनी दूरी न हो। पर स्थान बदलने के पक्षपाती इससे भी जोरदार दलील पेश करते हैं। किंग्सले हाल एक सार्वजनिक संस्था है। महात्माजी के वहाँ ठहरने से इस संस्था के कार्य में विघ्न-बाधा पड़ रही है। कार्यकर्त्ताओं की संख्या थोड़ी है; उन पर बोझ बहुत भारी आ पड़ा है। अभी उस दिन टेलीफोन पर रहनेवाले की ओर से

दबी ज़बान शिकायत हुई थी कि मुझे साँस लेने की भी फ़ुरसत नहीं मिल रही है। मैंने उस दिन इस संस्था की परिचालिका मिस लेस्टर से बातें की थीं—अन्य कार्यकर्त्ताओं से भी कहा था कि हम लोग हाथ बँटाने को तैयार हैं। पर लेस्टर बराबर यही कहती जाती है कि हमें कोई कष्ट या असुविधा नहीं है। अगर होगी तो कह देने में हमें कुछ भी संकोच न होगा। महात्माजी के लिए इतना ही बस है। उनके सामने और दलीलें भी पेश की गयीं—लेस्टर की आपमें पूरी भक्ति है, पर भारतवर्ष के राजनैतिक आन्दोलन से उसकी पूरी सहानुभूति नहीं; इस संस्था के सभी ट्रस्टी आपको उस दृष्टि से नहीं देखते, जिस दृष्टि से लेस्टर देखती है, इत्यादि, इत्यादि। पर इनका महात्माजी पर कुछ भी असर न पड़ा। आज मेरे पूछने पर वह कहने लगे :

"आज फिर मेरी लेस्टर से इस सम्बन्ध में बातें हुई हैं। मैंने उससे कहा कि मेरे यहाँ रहने से तुम्हारी संस्था की किसी प्रकार की क्षति हो या तुम लोगों को किसी कठिनाई का सामना करना पड़े तो मुझे स्पष्ट बता देना। तुम्हारे और मेरे बीच संकोच का पर्दा नहीं रहना चाहिए। पर लेस्टर ने फिर मुझे विश्वास

दिलाया कि आपके यहाँ रहने से न तो हमलोगों को कष्ट है, न हमारी संस्था के काम में बाधा पड़ रही है, बल्कि आपके रहने से इसका खासा उपकार हुआ है। कुछ ऐसे लोग, जो इससे विमुख या हमारे विरोधी हो रहे थे, अब हमारे यहाँ आने लगे हैं और हमारा साथ दे रहे हैं। लेस्टर की बात का मुझे विश्वास है और मैं यहाँ से अन्यत्र जाने का विचार नहीं करता।"

यह गरीबों का मुहल्ला है और इसमें सन्देह नहीं कि इस श्रेणी के लोगों के हृदय में गांधीजी के प्रति प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा है। भाव के भूखे महात्माजी इनसे अलग होने का अभी कोई कारण नहीं देखते।

मीराबेन और लेस्टर एक दूसरी से कुछ खिची-सी रहती हैं। इसकी चर्चा चलने पर महात्माजी ने कहा कि "मै तो मीराबेन को ही दोष दूँगा। उनके मन में यह आता है कि जिस हदतक मैंने त्याग किया है, उसीतक दूसरे भी क्यों न करें? पर मनुष्य को अपने त्याग या तप का कुछ भी अभिमान नहीं करना चाहिए। मुझसे जहाँ तक बन पड़ता है, मैं करता हूँ—दूसरे अगर उस हदतक नहीं बढ़ सकते, तो मै इसका बुरा क्यों मानूँ? त्याग की राह पर कदम रखनेवाले को आरम्भ में अभिमान-सा हुआ करता है, मुझे भी

किसी समय हुआ था, पर मैं तो शीघ्र ही सँभल गया।"

महात्माजी के कानों तक लोगों की यह टिप्पणी भी पहुँच चुकी है कि लेस्टर अपनी संस्था का विज्ञापन करने के लिए ही उन्हें अपना अतिथि रखना चाहती है। इस विषय में महात्माजी ने कहा :—

"अगर वह ऐसा चाहती है और उसकी संस्था का कुछ विज्ञापन होता है तो क्या हर्ज है? आखिर उसका और उसकी संस्था का व्रत तो दीन-दुखियों की सेवा करना ही है।"

दूसरा प्रश्न शार्टहैंड टाइपिस्ट के विषय में था— उसे कब से आना होगा? उत्तर मिला कि "अभी उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। लिखने-लिखाने का समय ही कहाँ मिलता है? लेख के रूप में जो कुछ सामने आता है उसको 'पास' कर देता हूँ। महादेव की भाषा तो मेरे 'अनुकूल' हो गयी है। उसकी लिखावट भी अच्छी होती है। पर प्यारेलाल में यह बात नहीं है। उसके अक्षर बहुत ख़राब होते हैं और उसकी भाषा भी पूरी सन्तोषजनक नहीं होती। विद्वान् तो अच्छा है, पर उसकी भाषा या रचना बराबर एक-सी नहीं होती। जब उसका ध्यान अपने विषय पर केन्द्रीभूत रहता है, तब तो अच्छा लिख लेता है, नहीं

तो त्रुटियाँ रह जाती हैं।"

सुना था कि कान्फ्रेंस आने-जाने के लिए मोटर की नयी व्यवस्था आवश्यक है, पर पूछने पर मालूम हुआ कि यह ख़बर भी ग़लत है। एक हिन्दुस्तानी डाक्टर ने महात्माजी को पहुँचाने का काम अपने ज़िम्मे ले रखा है। कल ग़लती से उनकी मोटर एक दरवाज़े पर खड़ी रही और महात्माजी दूसरे दरवाज़े से बाहर निकले। लाचार टैक्सी से आना पड़ा। जब महात्माजी को पीछे मालूम हुआ कि डाक्टर साहब की गाड़ी मौजूद थी, तब उन्हें इसका खेद हुआ। कहते थे कि मेरा मौन का दिन था, इसलिए पूरी तहक़ीक़ात न करा सका—महादेव से पता न लग सका कि गाड़ी किधर खड़ी है। व्यर्थ एक कौड़ी भी ख़र्च न हो, इसका महात्माजी को पूरा ध्यान रहता है। फिर भी उन्होंने कुछ पैसे बचा ही लिये। मालवीयजी के लिए भी टैक्सी करनी थी, सो उन्हें अपनी टैक्सी में ही आर्य-भवन छोड़ते आये। पर आगे के लिए उन्होंने कहा कि भाड़े की गाड़ी की कोई ज़रूरत नहीं है।

मैंने कहा—तो तीनों बातों के सम्बन्ध में मुझे जो सूचना मिली थी वह ग़लत निकली।

महात्माजी—बिल्कुल ग़लत।

मैं—तीनों-की-तीनों अखबारी खबरें साबित हुईं ?

महात्माजी खिलखिलाकर हँस पड़े।

× × × ×

आज की कान्फ्रेंस में महात्माजी का जो भाषण हुआ है, उसकी चर्चा छिड़ी। सभी मुक्तकण्ठ से उसकी प्रशंसा कर रहे हैं और कहते हैं कि ऐतिहासिक दृष्टि से यह अमर होगा। कान्फ्रेंस में जाने से पहले महात्माजी भारत-सचिव से मिले थे। उसका रुख उन्होंने अच्छा पाया। महात्माजी ने उसे स्पष्ट-से-स्पष्ट शब्दों में यह बताया कि वह ब्रिटिश शासन-पद्धति के परम अनुरक्त भक्त से उसके कट्टर शत्रु कैसे बन गये। उन्होंने कहा कि "एक समय था जब मैं तुम्हारे शासन को अपने देश के लिए हितकर समझता था और उसकी भलाई मनाता था। मेरा दावा है कि संसार में शायद ही कोई दूसरा मनुष्य होगा, जिसने मेरी ही तरह पवित्र और निःस्वार्थ भाव से तुम्हारा साथ दिया होगा—तुम्हारा भला चाहा होगा। फिर क्या कारण कि मैं आज दोस्त से दुश्मन बन गया हूँ और तुम्हारी जड़ सींचने के बजाय उसे खोदने में दिन-रात लगा हुआ हूँ ? होर ने कहा—"महात्माजी, मैं तो संस्कार से ही दूसरे मत का अनुयायी हूँ। मेरी

शिक्षा-दीक्षा इस प्रकार की हुई है कि मेरी जाति ने भारतवर्ष मे जो कुछ किया है, उसका मुझे गर्व है।" महात्माजी ने उत्तर दिया—"तुम्हें गर्व होगा, पर होना नहीं चाहिए। भारतवर्ष की इस समय जो दशा है और दिन-दिन होती जा रही है, वह तुम्हारे लिए अभिमान की नहीं, लज्जा की वात है। वरसों से मेरा अपने देश की जनता से घनिष्ठ सम्वन्ध चला आ रहा है। गाँवों मे घूमना-फिरना, ग्रामीण लोगों के साथ उठना-वैठना, उनके सुख-दुख में शामिल होना, उनकी कठिनाइयों की जाँच-पड़ताल कर उनकी पूरी जानकारी हासिल करना—इन वातों मे तुम्हारा एक भी कर्मचारी मेरी वरावरी नहीं कर सकता। मैंने अपनी आँखों देखा है कि मेरे इन देशवासियों की कल क्या हालत थी और आज क्या हालत है, और वहुत कुछ कटु अनुभव प्राप्त करके मै तो इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि तुम्हारे हाथों हमारी भलाई नहीं हो सकती।" होर ने कहा कि अभी तो हमारे समझौते के प्रयास का आरम्भ ही हो रहा है; अन्त होने से पहले आपसे वहुत कुछ वातें करनी हैं। महात्माजी को इसके वाद ही कान्फ्रेंस में जाना और अपना वक्तव्य सुनाना था। होर ने कहा कि मैं चाहता

तो नहीं था कि आज आपको कुछ भी कष्ट दूँ, पर साथ ही आपसे यथा-सम्भव शीघ्र मिल लेना भी आवश्यक था। महात्माजी के ठहरने के स्थान के विषय में पूछ-ताछ की। उन्होंने कहा कि मैं अपने ग़रीब भाइयों के बीच बड़े सुख से हूँ। होर बोला कि इंग्लैण्ड का वास्तविक जीवन भी ग़रीब लोगों का ही जीवन है। उसकी बातचीत के ढंग से महात्माजी को सन्तोष हुआ। कहते थे कि "उसने न तो हाकिम-हुक्काम की तरह रूखे-सूखे शब्दों में बातें कीं, न कूटनीति की भाषा का ही उपयोग किया।" मैंने उससे कहा कि मुझसे यह आशा मत करो कि मेरी ज़बान कभी भी मेरे मन की बात छिपाने की कोशिश करेगी। हाँ, मैं यह सार्टिफ़िकट ज़रूर चाहता हूँ कि समझौते के लिए मैंने कुछ भी उठा न रक्खा। उसने कहा कि मैं भी आपसे ऐसा ही सार्टिफ़िकट पाने का इच्छुक रहूँगा।"

मैं—"तो यह मान लूँ कि उससे आपकी जो बातचीत हुई वह आशाप्रद थी?"

सिर हिलाते हुए महात्माजी ने कहा कि "नहीं। इतना ही कहूँगा कि मैंने यह आशा नहीं की थी कि वह मुझसे इस हद तक दिल खोलकर बातें करेगा।"

लार्ड सैंकी से होर की तुलना होने लगी।

सरोजिनी नायडू : लेखक : गाधीजी : सर प्रभाशंकर पट्टणी
(कान्फरेन्स मे जाते हुए)

महात्माजी ने कहा कि इसपर भी मेरी बातों का अच्छा प्रभाव पड़ा है; पर इसमें सन्देह नहीं कि वह होर से कहीं अधिक चतुर और गम्भीर है, इसलिए उसके शब्दों से ही उसके हृदय की थाह मिलनी मुश्किल है। महात्माजी ने उसे एक चपत अच्छी लगायी। वह देशी नरेशों की बात करने लगा, तो महात्माजी ने कहा कि "क्या असलियत तुमसे छिपी है ? क्या तुम नहीं जानते कि कान्फ्रेंस सरकार की हाँ में हाँ मिलानेवालों से भर दी गयी है ? क्या यह भी बताना आवश्यक है कि जिन नरेशों की तुम बात करते हो, वे सब-के-सब सरकार के इशारे पर नाचने-वाले हैं ? मैं उन्हें या उनकी बातों को कुछ भी महत्त्व नहीं देता और जो सच्ची बात है वह तुम्हें भी मालूम है।" सैंकी से इसका कुछ भी जवाब न बन पड़ा।

महात्माजी के पैर जमते जा रहे हैं। उनकी चमक से दुश्मनों को भी चकाचौंध लग गयी। लार्ड रीडिङ्ग के पास से वह दो-तीन बार गुजरे, तो वह खड़ा हो गया और उनसे विशेष बातचीत करने की इच्छा प्रकट की।

चर्चिल अभी स्वयं नहीं मिला है, पर बेंट को

भेजा था। अख़बारवाले उसे ताना देने लग गये हैं। 'स्टार' ने लिखा है कि तुम तो बड़े वीर बहादुर हो—शेरों का सामना करनेवाले हो—पर जब गांधी तुमसे मिलने को तैयार है, तो दुम दबाकर क्यों भागे जाते हो? बेटे में बाप की सी ही तेज़ी है और उसके विचार भी बिल्कुल वैसे ही हैं। उसने पूछा कि अगर कान्फ्रेंस से कोई भी नतीजा न निकला—समझौता न हो सका—तो आप क्या करेंगे? गांधीजी ने एक शब्द में उत्तर दिया कि 'सत्याग्रह'; और इसकी व्याख्या-सी करते हुए बोले कि पिछली बार हमलोग जो कुछ कष्ट झेल चुके है, उससे इस बार कहीं अधिक झेलने को तैयार रहना पड़ेगा। उन्होंने उसे मेन की की प्रसिद्ध पुस्तक 'प्राचीन ग्राम संस्थायें' (एन्शियेंट विलेज कम्यूनिटीज़') पढ़ने की सलाह दी, जिससे उसे पता चल जाये कि भारत-वासियों में स्वराज की क्षमता कहाँ तक थी और आज भी है। उसने कहा कि मैं पिता को सब बातें सुनाऊँगा। चर्चिल पर इनका कुछ भी प्रभाव पड़ेगा या गांधीजी से मिलने के फलस्वरूप वह अपनी राह छोड़ देगा, यह आशा तो दुराशामात्र है। फिर गांधीजी का यह प्रयास क्यों? बात यह है कि वह संसार की सहानु-

भूति अपने साथ कर लेने का मार्ग अच्छी तरह जान गये हैं। उनकी यह विद्या निराली है। महात्माजी ने अपनी ओर से ऐलान कर दिया कि जो मुझे गालियाँ देते हैं और मेरे कट्टर-से-कट्टर दुश्मन हैं, मैं उनसे भी मिलने और बातें करने को तैयार हूँ। चर्चिल अभी तक चुप है। वास्तव में महात्माजी के नाम से वह असमंजस में पड़ गया है। पर वहाँ मिले या न मिले, नैतिक रणक्षेत्र में इससे महात्माजी के पक्ष को ही सहायता पहुँचेगी।

लार्ड इर्विन को महात्माजी ने आते ही तार दिया था कि मैं पहुँच गया हूँ, तुम कब और कहाँ मिल सकते हो? कहते थे कि उसके उत्तर में उसने बड़ा ही सुन्दर पत्र लिखा है। कहा कि मैं जान-बूझकर आर० टी० सी० में शरीक नहीं हुआ, क्योंकि मेरा ख़याल है कि मैं बाहर रहकर अधिक सहायता कर सकता हूँ। वह शीघ्र ही लन्दन आनेवाला है।

शिमले से एमर्सन ने भी महात्माजी के पत्र का बड़ा ही सन्तोषजनक उत्तर दिया है। महात्माजी ने बड़ी फटकार बतायी थी—उसे बहुत कुछ भला-बुरा कहा था। महात्माजी कहते थे कि उसका पत्र पढ़ने के लायक़ है। उसने एक तार भी दिया था, पर वह

किसी कारणवश महात्माजी को न मिल सका।

मैंने कहा कि "आपने अपना वक्तव्य सुना दिया। सबको मालूम होगया कि आप क्या चाहते हैं—अब आगे क्या होगा? आप उनके उत्तर की प्रतीक्षा करेंगे या उत्तर मिले बिना भी कमेटी की कार्रवाई में भाग लेंगे?" महात्माजी ने कहा कि "मैं कार्रवाई में भाग लूँगा। जहाँ मैं देखूँगा कि कोई ऐसा प्रश्न उपस्थित है, जो कांग्रेस के किसी मूल सिद्धान्त से सम्बन्ध रखता है और उसके विषय में कांग्रेस का मत स्पष्ट कर देना आवश्यक है, वहाँ मैं अपनी राय जाहिर कर दूँगा। उदाहरण के लिए—वोट देने के अधिकार का प्रश्न है। अनावश्यक बातों पर बोलने का विचार मेरा नहीं है। सैंकी शायद यह नहीं चाहता था कि मै कार्रवाई में इस प्रकार भाग लूँ। पर जब वह भाग लेनेवालों की लिस्ट बनाने लगा तब मैंने भी अपना नाम लिखा दिया। वह मेरा भाग लेना नहीं चाहता था—यह मै इसलिए कहता हूँ कि मैं उसकी बगल में ही बैठता हूँ और उसने मुझसे इस सम्बन्ध में कुछ भी बात नहीं की। नाम लिखाकर मैंने उससे कह दिया कि तुम चाहे मुझे सबके बाद बोलने का मौका दे सकते हो।"

मैंने पूछा कि आप जहाँ कुछ भी न बोलेंगे वहाँ 'मौन सम्मति लक्षण' तो न समझा जायेगा ?

महात्माजी ने कहा कि "हर्गिज नहीं। यह तो मैं स्पष्ट कर दूँगा कि प्रत्येक निर्णय को मैं स्वीकार करता हूँ—यह कोई न समझे।"

मैंने कहा—मान लीजिए कि उन्होंने इसमें बहुत ज्यादा समय लगा दिया तो आप तबतक उनके उत्तर की राह देखते रहेंगे ?

महात्माजी—"उनका उत्तर क्या होगा, यह तो मुझे कुछ ही दिनों में मालूम हो जायेगा। पर अगर उन्होंने हमें छोटी बातों में उलझाकर समय बिताना चाहा, तो मै ऐसा कब होने दूँगा ? मै भी तो लगाम कसना शुरू कर दूँगा !"

आज के भाषण के सम्बन्ध में मैंने पूछा कि उसके लिए आपने कोई तैयारी की थी क्या ? बोले—"कुछ भी नहीं। चाहता जरूर था कि ऐसे मौके पर बोलने के लिए कुछ तैयारी कर लूँ, कुछ बातें सोच लूँ। पर इसके लिए समय न मिल सका। कल रात कुछ ऐसी ही बाधा पड़ गयी कि इस ओर ध्यान न दे सका। आज सुबह दो सज्जन मिलने आगये। सोचा कि होर से मिलने इंडिया आफिस जाना है, रास्ते

में कुछ सोच लूँगा। पर गाड़ी में एण्डूरूज़ का साथ हो गया और रास्ते भर बातें होती रहीं। इंडिया आफ़िस में नियत समय से २० मिनिट पहले पहुँचा (कल महात्माजी को कान्फ्रेंस पहुँचने में कुछ देर हो गयी—भीड़ ज्यादा होने के कारण-गाड़ियों को रुक जाना पड़ता है, इसलिए आज समय बचाकर चले थे) पर वहाँ भी कुछ सोचने का समय न मिला, क्योंकि होर के दो सेक्रेटरी आगये और उनसे बातें होती रहीं। बस इतना ही सोच सका कि कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से मुझे बोलना है, इसलिए उसके विषय में कुछ कहना चाहिए। जो कुछ तैयारी कर सका वह इतनी ही!"

मैंने कहा कि बिना कुछ भी तैयारी के ऐसा अद्भुत भाषण हो, इसे तो दैवी अनुप्रेरणा ही समझना चाहिए।

महात्माजी बोले—"बिल्कुल ठीक है। लार्ड इर्विन से समझौता हो जाने पर मैंने पत्र-प्रतिनिधियों को जो वक्तव्य दिया था, यहाँ आने के दिन मेरा जो भाषण हुआ, अमेरिका के लिए अभी उस दिन जो सन्देश देना पड़ा—इनमें किसीके भी लिए पहले से न तो कुछ तैयारी कर सका था, न कुछ सोच ही

सका था। ऐन मौके पर हृदय में जो आकाशवाणी हुई, उसे दोहरा दिया। यह सब ईश्वर की अनुकम्पा का फल है।"

आगे क्या होगा ईश्वर जाने, पर आसार बुरे नहीं हैं। प्रधान-मन्त्री की ओर से कोई बात अभी तक आशाप्रद नहीं हुई है, पर जैसा कि गांधीजी ने कहा—उसका प्रभाव नहीं के बराबर रह गया है। अखबारों में अभीतक "मैंचेस्टर गार्जियन" जैसी सचाई और सहानुभूति किसी दूसरे ने नहीं दिखायी, यद्यपि उसने भी भूलकर लिख दिया है कि महात्माजी ने लँगोटी त्यागकर पाजामा पहन लिया! महात्माजी यह सुनकर हँसने लगे। "डेली मेल" महात्माजी को सनकी (फेनेटिकल) लिखता जाता है, पर उसने भी तार द्वारा ३००० शब्दों का एक लेख इस आशय का माँगा है कि आप क्या चाहते हैं? साथ ही वचन दिया है कि लेख ज्यों-का-त्यों छपेगा—एक शब्द का भी हेर-फेर न होगा। महात्माजी ने उत्तर दिया है कि अभी तो बहुत-सा काम है, पर समय मिलते ही मैं लेख भेज दूँगा।

: १५ :

१७ सितंबर, '३१

लन्दन

कल रात महात्माजी से फिर मिला था। मुझसे कहा, मैंचेस्टर साथ चलो। मैंने पूछा, बम्बई से तार आया है कि फेडरेशन के प्रतिनिधित्व का क्या होगा? उसपर महात्माजी ने कहा, मै प्रधान मंत्री से कहनेवाला हूँ, किन्तु मेरे पॉव और जम जायँ, तब कहना ठीक होगा। यदि यहाँसे भागना ही पड़े तो क्या लाभ है?

महात्माजी की शरीर-रक्षा के लिए काफ़ी खुफ़िया तैनात हैं। कल रात को ख़ुफ़ियावालों ने आकर कहा कि "आपको तो कोई पर्वाह नही; किन्तु इंग्लैण्ड में रहते यदि आपका बाल भी बाँका हो जाये तो हमारा मुहँ काला हो जायेगा। इसलिए कृपया आप जहाँ जावें हमें सूचना दे दें, जिससे हमें आपका पीछा करने में सुभीता हो।" गांधीजी कहते थे कि भारत-सचिव ने भी ऐसा ही कहा था। फलतः महात्मा-

जी जहाँ जाते हैं, अपने दौरे की सूचना खुफ़िया को दे देते हैं।

एक ग्रामोफोन कम्पनीवाला अपने रेकार्ड में महात्माजी का प्रवचन चाहता था। खूब बहस हुई। सारा मसला नीति की कसौटी पर कसा गया। अन्त में माँग अस्वीकार की गयी। कुछ दिन पीछे बहस-मुबाहसे के बाद यह माँग स्वीकार की गयी।

क्लार्क कहता था, "मैंचेस्टर को रोटी फेंक दो और भारत में रहनेवाले अंग्रेज व्यापारियों की दिल-जमई कर दो, तो तुम्हारा काम शीघ्र बन जाये।" किन्तु इनकी दिलजमई की जाये तो कैसे? इन्हें चाहिए मिश्री और हमलोग बातों से ही इन्हें मिठास का अनुभव कराना चाहते हैं!

: १६ :

२४ सितबर, '३१

लन्दन

कल रात को हाउस ऑव कामन्स में महात्माजी का भाषण था। श्रोताओं में सभी लोग मौजूद थे। उपस्थिति २०० के क़रीब थी, जिसमें प्रायः १५० पार्लमेण्ट के मेम्बर रहे होंगे। कई बारादरियों से गुजरकर हमलोग सभा के स्थान पर पहुँचे। महात्माजी ने अपने भाषण में कहा कि "हम लोग क्या चाहते हैं और क्यों चाहते हैं, यह मैं एक नहीं अनेक बार बता चुका हूँ। हम 'पूर्ण स्वराज' से ही संतुष्ट हो सकते हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं कि हम अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकायेंगे। हम भागीदार होकर तुम्हारे साथ रहना चाहते हैं, गुलाम होकर नहीं। हमारी मर्ज़ी की बात होनी चाहिए—जबतक अपनी भलाई देखते हैं, तुम्हारे साथ रहेंगे; दूसरी बात होते ही सम्बन्ध-विच्छेद कर लेंगे। पिछली कान्फ्रेंस में संरक्षणों पर ज़ोर दिया गया था। पर

जो व्यवस्था वहाँ तजवीज़ की गयी थी, वह न तो 'औपनिवेशिक स्वराज्य' (डोमानियन स्टेटस) था न किसी प्रकार की स्वतन्त्रता। फौज और पर-राष्ट्र-नीति दोनों ही तुम अपने हाथ में रखना चाहते हो। आर्थिक नीति के सम्बन्ध में भी तुम संरक्षण चाहते हो। फिर जो कुछ देते हो उसका मूल्य ही क्या ? तुम कहते हो कि सेना भारत की रक्षा के लिए रहेगी। वास्तव में उसका काम होगा भारत को पराधीन रखना, उसके हाथ-पाँव हिलने-डुलने न देना! हम अंग्रेज़ों को हर्गिज़ निकालना नहीं चाहते। पर हम यह ज़रूर चाहते हैं कि वे हमारे नौकर होकर रहें, मालिक होकर नहीं।"

इंग्लैण्ड ने आखिर गोल्ड स्टैण्डर्ड छोड़ दिया। भारतवर्ष सोने से तो हट गया, पर स्टर्लिङ्ग से वह अभी तक बँधा हुआ है। शुस्टर ने शिमले में कुछ कहा और होर ने फेडरल कमेटी में कुछ! जान-बूझकर यहाँवालों ने पीछे बेईमानी की है। महात्माजी ने इस सम्बन्ध में जो वक्तव्य दिया, वह मुझे बहुत पसन्द न पड़ा। मेरे कहने से उसमें उन्होंने थोड़ा परिवर्तन भी किया। रात को इस विषय में उनसे फिर बातें हुईं। मैंने कहा कि आप ऐसे मामलों में

बिना पूछे ही वक्तव्य दे देते हैं, यह कैसी बात है ? बड़ी बहस हुई। महात्माजी की दलील थी कि मेरे शब्दों वह अर्थ ही नहीं हो सकता, जो तुम करते हो। बोले कि "वकालत में जितनी अच्छी बातें सीखने को मिलती हैं, उन्हें मैंने ग्रहण कर लिया है। मैंने एक भी ऐसी बात नहीं रक्खी थी जिसके लिए कोई मुझे पकड़ सके।" ख़ैर, अन्त में यह ठहरा कि भविष्य में बिना सलाह लिये ऐसे विषय पर कुछ भी न कहेंगे।

सेक्रेटरी ऑव स्टेट की ओर से एक पत्र आया था। उसका जवाब भेज दिया है।

मेरे विरुद्ध काफ़ी प्रचार किया गया है। इसका फल यह हुआ कि मेरा अविश्वास किया जाता है। हाँ, जबसे कान्फ्रेंस का मेंबर बना हूँ तबसे लोगों से मिलना-जुलना ज्यादा होता है।

अटल से मिला था। योंहीं अचानक मुलाक़ात हो गयी। इस सप्ताह लोथियन और बेन से मिला। अच्छी बातें हुईं। पर बातों से तो अब काम आगे नहीं बढ़ता।

पण्डितजी की तन्दुरुस्ती अच्छी है।

उस दिन श्री विट्ठलभाई पटेल महात्माजी के पास पहुँचे और कहने लगे कि फेडरल कमेटी में आपका जो भाषण हुआ, उसे पढ़कर तो मैं बेहोश-सा होगया।

यह आपने क्या कह डाला ? महात्माजी बोले कि "मैंने तो एक ही चार्ली चैपलिन का नाम सुना था, मुझे क्या खबर थी कि अपने यहाँ भी एक चार्ली चैपलिन है ! ख़ैर, तुम लोगों को मेरा भाषण पसन्द नहीं है, तो तुम अपना मुख्तारनामा वापस ले सकते हो।"

महात्माजी की बातें निराली हैं। उस दिन कहते थे कि मुझे बच्चों के साथ खेलना जितना अच्छा लगता है, उतना आर० टी० सी० में शरीक होना नहीं लगता। ग़रीबों की मंडली ही महात्माजी की आर० टी० सी० है।

: १७ :

३० सितंबर, '३१

लन्दन

महात्माजी मैंचेस्टर से लौट आये। वहाँ उनका अच्छा प्रभाव पड़ा।

हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न अभी तक हल नहीं हो सका है। आशा भी कम है। सोमवार (२८ सितंबर ३१) को कान्फ्रेंस की अल्प-संख्यक-कमेटी की मीटिङ्ग थी। प्रधान मंत्री ने उसमें प्रजा-प्रतिनिधियों को इस हिसाब से बिठाया—सबसे पहले श्रीमती नायडू, फिर गांधीजी, फिर मालवीयजी, फिर मैं।

प्रधान मंत्री का भाषण मुझे अच्छा नहीं लगा। उसमें ईमानदारी नहीं थी। खुशामद काफी थी; हमारे दर्शन-शास्त्रों की भरपूर प्रशंसा भी थी, पर इन ऊपरी बातों के सिवाय और कुछ न था। महात्माजी के सामने, सभा-विसर्जन के बाद, उसने हाथ जोड़े और कहा कि कभी आपके आश्रम में आकर अपने पापों को धोऊँगा! मालवीयजी ने सर्वप्रथम दो दिन के

लिए सभा स्थगित करने को कहा। मोहलत मिली भी, पर किसीसे कुछ बन न पड़ा। गांधीजी और आग़ाखाँ में बातें ज़रूर चलती हैं, परन्तु उसका मोहलत से कोई सम्बन्ध नहीं। कुछ 'प्रतिनिधियों' का रुख़ लज्जित करनेवाला था। इनमें कोई कनफटे जोगी की तरह गाली देकर माँगता है, कोई घरू ब्राह्मण की तरह माँगता है, पर हैं दोनों भिखमंगे। यद्यपि यह स्पष्ट है कि ये ब्रिटिश सरकार के ही आदमी हैं और अपने मालिकों के मन की ही बात कहने-करनेवाले हैं, तो भी आपस में कुँजड़ों की-सी लड़ाई शर्मानेवाली है।

हिन्दू-मुस्लिम-समस्या के सम्बन्ध में गांधीजी की आग़ाखाँ से तीन-चार घण्टे बातचीत हुई। उनकी तो वह पुरानी कहानी है कि अन्सारी को बुलाओ! काग़ज़ पर दस्तख़त भी करके दे आये हैं और कह दिया है कि जो कुछ अन्सारी कहेगा, मान लूँगा और देश से मनाने की पूरी कोशिश करूँगा। अब सबकी गर्दन अन्सारी के हाथ में है, पर महात्माजी कहते हैं कि इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं है। गांधीजी पर मुसलमान काफी बिगड़े हैं कि अन्सारी को इतना वज़न क्यों? और अन्सारी को बुलानेवाले भी नहीं

हैं, लेकिन जान पड़ता है कि टूटने की नौबत न आवेगी। अगर टूट भी जाये, तो हमारा बुरा नहीं है। आज फिर गांधीजी मुसलमानों से मिलनेवाले हैं। कुछ लोगों का प्रस्ताव था कि अंग्रेज़ों की पंचायत से निपटारा करा लिया जाये। किन्तु पंडितजी और गांधीजी की राय कम है। यह सही भी है। जहाँ ऐसी पंचायत का प्रस्ताव किया, वहाँ हमारी कमज़ोरी साबित हो जायेगी और हम स्वराज माँगने के लायक नहीं रहेंगे।

मार्ले से मिला था। यह पार्लमेण्ट का मेंबर है। कहता था कि कुछ होना-जाना नहीं है, बातें बनाके वापस कर देंगे। उसका ख़याल है कि नये चुनाव में कंज़र्वेटिव बड़ी तादाद में आ जायेंगे और सब तरह से दमन करेंगे। मेरे पूछने पर उसने कहा कि आवश्यक हुआ तो यहाँ से पैसे और फ़ौज दोनों ही भेजे जायेंगे। अध्यापक हैरल्ड लैस्की (लन्दन-विश्वविद्यालय में राजनीति-विज्ञान का अध्यापक और इस देश का एक प्रसिद्ध विद्वान्) का मत और है। उसने कहा कि यहाँकी सेना अधिक काल तक वहाँ ऐसे काम के लिए नहीं ठहर सकती। लैस्की से अर्थशास्त्र-सम्बन्धी बातें काफ़ी हुईं। हमारे राजनैतिक मसले पर भी
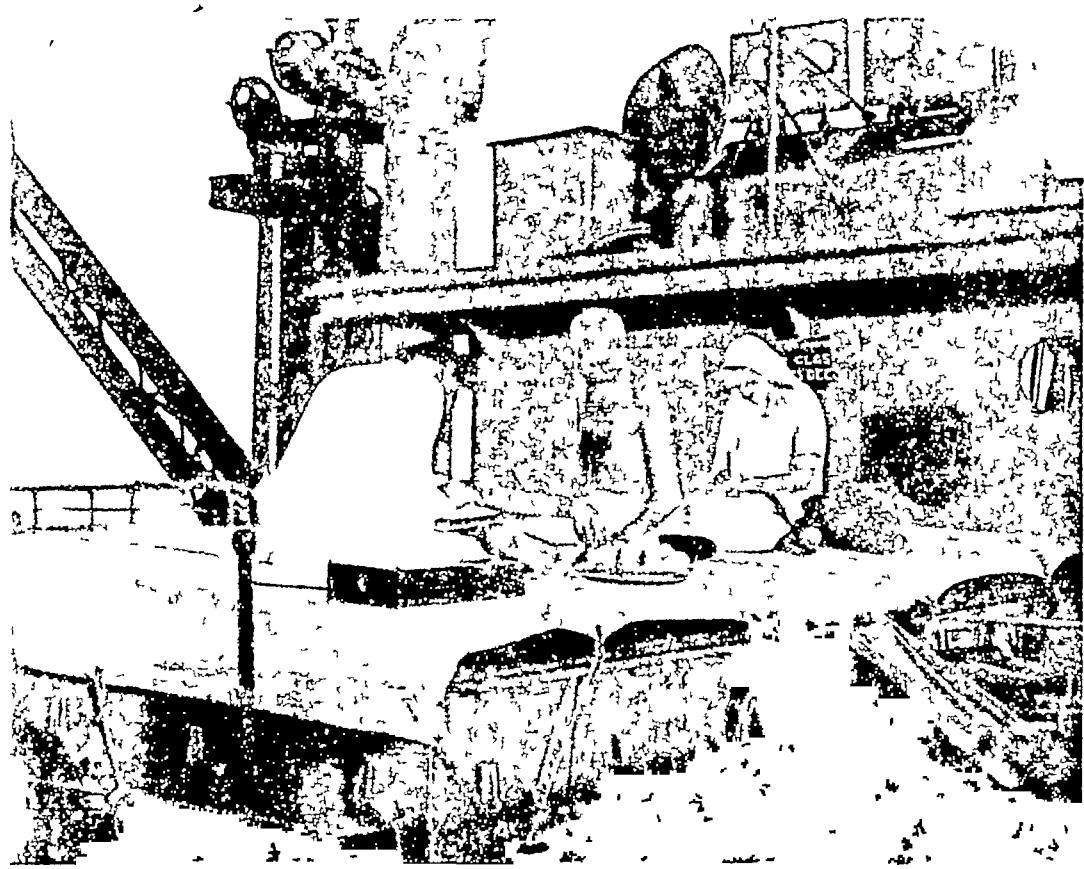
जहाज पर गांधीजी श्री महादेव देसाई और श्रीमती मीरा बेन के साथ

लन्दन में गाधीजी अपनी पार्टी के साथ
(मित्र मडली के बीच)

बातचीत हुई। उसका भी यही कहना है कि कुछ होनेवाला नहीं है। लैस्की का ख़याल है कि यहाँ भयंकर स्थिति पैदा होनेवाली है। कल एक बहुत बड़ा जुलूस निकला था, जिसपर पुलिस की लाठियाँ बरसी थीं। कम्यूनिस्ट पार्टी ज़ोर पकड़ती जा रही है।

कल महात्माजी ने कहा कि पंडितजी को हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न के सम्बन्ध में समझाओ। मैंने निवेदन किया कि आपकी आत्मा जो कहे आप कर लें। पण्डितजी भी मान जायँगे।

कल भारत-मन्त्री से महात्माजी की तीन घण्टे तक बात-चीत हुई। महात्माजी ने कहा कि "समय बरबाद न करो; देने के सम्बन्ध में या तो सीधी-सीधी बातें करो या वापस जाने दो। मुझे इससे कुछ भी दुःख न होगा, पर समय की बरबादी से होगा।" होर ने कहा कि आपको व्यर्थ न रोकूँगा। उसका भी विचार है कि कान्फ्रेंस में कुछ तय होना नहीं है। उसने छोटी-सी कमेटी का प्रस्ताव किया तो महात्मा-जी बोले कि "मै पहले से ही जानता हूँ कि कान्फ्रेंस द्वारा कुछ तय होनेवाला नहीं है। मैं तो तुम्हारे निमन्त्रण के कारण इसमें शरीक हुआ हूँ। पर कमेटी

में भाग लेने से पहले यह तय कर लेना जरूरी है कि तुम कहाँतक जाने को तैयार हो। पहले मूल सिद्धान्तों पर हम सहमत हो लें, फिर और बातें कर लेंगे।"

होर—मैं पहले इर्विन से बातें करूँगा। आपकी तरह हमारे भी आदर्श हैं, पर आपकी तरह हम यह नहीं मानते कि हिन्दुस्तान में हमसे इतनी ज्यादा बुराई हुई है। हमसे बहुत कुछ भलाई हुई है। वर्तमान में हम आपको सेना और अर्थ-विभाग का अधिकार कैसे दे सकते हैं?

महात्माजी—भूल से मनुष्य बुरी बात को अच्छी मान लेता है। तुम्हारे इस समय जो अदर्श हैं, उन्हें विना चोट लगे तुम न भूलोगे!

होर—मैं मानता हूँ कि ऐसा हुआ करता है, पर इस समय तो हमारा यही विश्वास है कि हमारे आदर्श झूठे नहीं हैं।

महात्माजी—करेंसी और एक्सचेंज के सम्बन्ध में निर्णय करने से पहले तुमने हमारे विशेषज्ञों को क्यों नहीं बुलाया?

होर—मैं मानता हूँ कि भूल हुई।

भूल-सुधार के नाम पर अब वह यह करनेवाला

है कि मुझको यहाँके प्रसिद्ध अर्थशास्त्री और अपने सलाहकार सर हेनरी स्ट्राकोश से मिलावेगा। हम दोनों की बहस होगी और गांधीजी उसे सुनकर यह कहेंगे कि सरकार ने जो कुछ किया, वह अच्छा था या बुरा। इसके लिए अगला मङ्गलवार निश्चित हुआ है। होर अपने दो एक मित्रों को भी बुलानेवाला है। संभवतः ये मित्र सर मानिकजी दादाभाई जैसे लोग होंगे। वास्तव में हम दोनों के बीच यह एक दंगल-सा होगा। पर मुझे तनिक भी आशंका नहीं है कि वह मुझे किसी भी अंश में कमजोर साबित कर सकेगा।

कल बेन्थल से महात्माजी की बहुत-सी बातें हुईं। उसने मेरा ज़िक्र किया और मुझे गरम मिज़ाज का बताया। उसका कहना था कि बिड़ला का आपपर असर पड़ जाता है। महात्माजी ने कहा कि मुझपर किसीका भी जल्दी असर नहीं पड़ता। बेन्थल ने मुझे मंगलवार को निमन्त्रित किया है। देखें क्या बातें होती हैं।

आज प्रधान-मन्त्री से महात्माजी मिले। बड़ी दिलचस्प बातें हुईं। होर के सम्बन्ध में महात्माजी की जितनी अच्छी धारणा हुई उतनी प्रधान-मन्त्री

के सम्बन्ध में नहीं। उसने कहा कि "तुम बार-बार पूछते हो कि क्या दोगे? पर यह बताओ कि तुममें क्या-क्या लेने की ताकत है?'

महात्माजी—"तो तुम मुझे ललकारते हो! मैं यहाँ आता ही क्यों? मै वहीं बैठा-बैठा सब कुछ ले लेता। आज तुम मुझे वापस जाने दो, मैं जो चाहूँगा, ले लूँगा। कान्फ्रेंस को तुमने अपने पिट्ठुओं से भर दिया। अगर तुम मुझे अपना प्रतिनिधि बनाकर हिन्दुस्तान भेजो, तो मैं तुम्हें सौ ऐसे आदमी और ला दूँ जो किसी प्रकार का समझौता न होने दें। तुम्हारी कांफ्रेंस में जो अछूतों का प्रतिनिधि है उसे किसने अपना प्रतिनिधि चुना? मेरा तो दावा है कि अछूतों का सच्चा प्रतिनिधि मै हूँ। ऐसे-ऐसे आदमियों को जमाकर उनके बल पर तुम मुझे ताना देते हो कि तुमसे क्या लेने की ताकत है! अगर तुम्हारा दिल पाक-साफ़ है, तो तुम हमें इस शर्त पर स्वराज्य दे दो कि हम आपस के झगड़े निपटा लेंगे, फिर देखो कि हम प्रश्न को हल कर लेते हैं या नहीं।"

बड़ी अच्छी फटकार थी। प्रधान-मन्त्री बग़लें झाँकने लगा। कहा कि हम दोनों की अपनी-अपनी कठिनाइयाँ हैं।

महात्माजी ने उत्तर दिया—"मेरी नहीं तुम्हारी कठिनाइयाँ हैं।"

उसका अच्छा असर न पड़ने पर भी महात्माजी प्रफुल्लित थे। रंग-ढंग से उत्साह काफी जान पड़ा—मेरा ख़याल है कि महात्माजी से लड़ाई मोल लेने की मूर्खता यहाँवाले न करेंगे। इनकी नीयत तो बेहद खराब है, पर यहाँकी स्थिति ऐसी बुरी होती जा रही है कि कान्फ्रेंस टूटने न देंगे। लैस्की ने कहा था कि बुध को सैकी मिलकर बातें करेगा। उसकी जगह प्रधान-मन्त्री खुद मिला। कल पण्डितजी से उसकी बातें होनेवाली हैं। पर एक बार मामला रंग पर आये बिना कुछ होनेवाला नहीं है। महात्माजी सम्भवतः शीघ्र ही वैसी परिस्थिति उत्पन्न कर देंगे।

एक्सचेंज का अध्याय अभी समाप्त नहीं हुआ है। प्रायः प्रत्येक देश सोने से विदा लेता जा रहा है। इसका सबसे बड़ा असर यह हुआ कि देने-लेने की जो बँधी रकमें थीं वे आप ही आप घट गयीं। क़र्ज़-दारों का क़र्ज़, पूँजीवालों की पूँजी कम हो गयी। स्थिति ख़राब है, इसलिए अभी बाज़ार सुधरने की आशा नहीं है।

ख़ुफ़ियावाले बराबर महात्माजी के साथ उनकी

हिफ़ाज़त के लिए चलते हैं। उनकी गाड़ी के आगे पुलिस की गाड़ी चलती है। जहाँ भीड़ नज़र आई वहाँ इस गाड़ी की घंटी बजी और पुलिस के सिपाहियों ने रास्ता साफ़ कर दिया।

: १८ :

१ अक्तूबर, '३१

लन्दन

आज अल्पसंख्यक-दल-कमेटी की फिर बैठक थी। महात्माजी ने कल मुसलमानों से कह दिया कि "मैं साफ-साफ बता दूँगा कि मौजूदा हालत में समझौता मेरे बस की बात नहीं है। अगर कुछ नहीं होता तो मैं कान्फ्रेंस से हट जाता हूँ।" इसपर उन लोगों ने आग्रह किया कि आप समझौते के लिए एक छोटी कमेटी बना दें और उसमें एक बार फिर प्रयत्न कर देखें कि कुछ तय होता है या नहीं। इसलिए फिर एक सप्ताह के लिए कमेटी का कार्य स्थगित किया गया। समझौते की कमेटी बन गयी है। मुझे भी उसका मेम्बर रक्खा है।

इन कमेटियों में कुछ होना नहीं है। मैंने महात्मा जी से कहा भी कि ऐसी बीसों कमेटियाँ पहले बैठ चुकीं, आपने फिर यह बला क्यों मोल ली? अन्सारी के बिना आप तो कुछ कमोबेश करनेवाले नहीं और

अन्य लोगों से तो अनन्तकाल तक भी समझौता नहीं होने का है। महात्माजी कहते हैं, "यह कमेटी तो मुझे नीचा दिखाने के लिए बनाई गई है और यह जानते हुए भी मैंने ही इसका संचालन करना स्वीकार किया है, किन्तु इसमें भी मेरी कोई हानि नहीं है। अंत में मैं तो अपना निर्णय दे दूँगा, चाहे कोई माने या न माने।" मुझे उनकी यह बात नापसंद है। किन्तु गांधीजी सब कुछ समझ कर ही करते हैं, इसलिए देखें क्या होता है।

अबतक का निचोड़ तो यह है कि न तो हम तिल घटे न चावल बढ़े। जहाँ-के-तहाँ ध्रुव की तरह बैठे हैं। यह भी स्पष्ट है कि अबतक यहाँके किसी प्रतिष्ठित नेता ने जीभ नहीं जमायी है, तो भी मेरा ऐसा खयाल है कि अब तक की सारी बातें 'बिलैया दंडवत्' हैं। या तो यों कहना चाहिए कि दोनों दल सलामी उतार रहे हैं। असल मुठभेड़ अगले सप्ताह में हो जायेगी। उसके बाद या तो उस पार या इस पार। मुझे तो अबतक यही विश्वास है कि कोई रास्ता निकलेगा। लेकिन यह स्पष्ट है कि महात्माजी को छोड़कर सब यहाँ तेज-हीन-से हो रहे हैं। कुछ तो लन्दन के सामने हक्के-बक्के हो गये, कुछ महात्माजी

के सामने दब गये, पर तो भी किसीमें जिसको हम 'झाड़ा-फाड़ा' कहते हैं, वह करने की शक्ति नहीं है। विचार करते-करते लोग बुड्ढे हो गये, किन्तु 'अब भी वह विचार, १०० वर्ष बाद देखो तो वही विचार' यह हाल है।

प्रधान-मंत्री ने आज महात्माजी से कहा कि कल मैंने जो कुछ कहा, उसका आपने कुछ भी बुरा तो नहीं माना! मैंने महात्माजी से कहा कि होर का आप-पर अच्छा प्रभाव पड़ा और प्रधान-मंत्री का बुरा, पर अन्त में प्रधान-मंत्री ही आपका साथ देगा। इसपर श्रीनिवास शास्त्री ने कहा कि "दोनों में कोई साथ न देगा। प्रधान-मंत्री से कुछ भी आशा करना व्यर्थ है। वह पक्का साम्राज्यवादी है और मौका पड़ने पर अपने सिद्धान्तों को ताक़ पर रख देता है।"

: १६ :

४ अक्तूबर, '३१

लन्दन

आज बेन्थल से दिन में भोजन के समय देर तक बातें हुईं। उसकी पत्नी भी मौजूद थी। पर हम लोगों की बातचीत अलग हुई।

मैंने आरम्भ में ही कहा कि मुझे तुम लोग गरम मिजाज का बताते फिरते हो और मेरा विश्वास भी कम करते हो। ऐसी अवस्था में मुझे डर है कि हम दोनों की स्पष्ट बातें न हो सकें। अगर ऐसा हुआ तो इससे कुछ भी लाभ न होगा।

बेन्थल ने कहा कि विश्वास रक्खो, मैं साफ़-साफ़ बातें करूँगा। फिर हम दोनों की जो बातचीत हुई उसका सारांश इस प्रकार है :

मैं—हमलोगों का ख़याल है कि कान्फ्रेंस के कारण समय की बरबादी हो रही है। सरकार ने इसे अपने ख़ुशामदी टट्टुओं से प्रायः भर दिया है और इसके द्वारा कुछ भी काम बनना असंभव है। अगर

सचमुच समझौता करना चाहते हो तो पहले मूल बातें निश्चित हो जानी चाहिएँ—यह मालूम हो जाना चाहिए कि तुम कहाँतक आगे बढ़ने को तैयार हो। मूल निश्चित हो जाने पर शाखा और पल्लव से सम्बन्ध रखनेवाली बातें एक विचार-समिति के हवाले कर दी जायँगी।

बेन्थल—एक दल यहाँ अवश्य इस बात के पक्ष में था कि समय नष्ट करके सबको यों ही वापस कर दिया जाये। पर दूसरे दल का—और यह दल प्रभावशाली है—विचार हुआ कि नहीं, समझौता अवश्य हो जाना चाहिए। मैं जो कुछ कहता हूँ उसकी प्रामाणिकता का तुम पूरा विश्वास कर सकते हो। ऐसे काम में अधीर होना ठीक नहीं। सालभर भीइस काम के लिए थोड़ा ही समझना चाहिए। मैं नाम नहीं बता सकता, पर मैं जिस दल की बात करता हूँ, उसकी पूरी राय है कि कुछ तय अवश्य हो जाना चाहिए।

मैं—साल भी लगे तो परवा नहीं, बशर्ते कि हो—समझौते की पूरी ख्वाहिश हो।

बेन्थल—मैं यह मानता हूँ, पर जहाँ तुम्हारी ओर से क़ानून द्वारा हमें बहिष्कृत करने की बातें होती हैं, वहाँ समझौता कैसे हो?

मैं—इस सम्बन्ध में तो गांधीजी आश्वासन दे ही चुके हैं, मैंने भी जातिगत बहिष्कार के विरुद्ध मत प्रकट किया है।

बेन्थल—पर बैङ्किङ्ग कमेटी की जो रिपोर्ट निकली है, उसे देखो। उसमें तो भारतवासियों की ओर से जो प्रस्ताव किये गये हैं, उनका उद्देश्य यही है कि अंग्रेजों को इस क्षेत्र से निकाल बाहर किया जाये।

मैं—असल में परिस्थिति और वातावरण को देखना चाहिए मौजूदा हालत में हमें यह ज़रूर कहना पड़ता है, पर हमें पूरा अधिकार मिल जाये तो हमारा रुख बदल जायगा।

बेन्थल—गांधीजी इस पर बात ज़ोर देते हैं कि आजतक जो कुछ हो चुका है, उसकी हम पूरी जाँच करेंगे। मसलन् वह इस बात पर तुले हुए हैं कि जितने पट्टे सरकार-द्वारा दिये जा चुके हैं उनकी जाँच हो और यह देखा जाये कि कहाँ-कहाँ पक्षपात हुआ है। पर यह कैसे पार पड़ेगा? न जाने कितने हजार पट्टे होंगे। किस-किस की जाँच होगी?

मैं—जाँच उन्हींकी होगी जिनके बारे में लोगों को शिकायत होगी। पर इस विषय में तुम गांधीजी का समाधान करा दो। वास्तव में मेरी उपयोगिता

तो तब होगी, जब तुम दोनों की बातें हो लेंगी और यह निश्चित हो जायगा कि समझौते की सम्भावना है। तुम अपनी रक्षा की बात करते हो, पर भारत-वासियों की रक्षा कैसे हो? सिन्धिया कम्पनी मौत की राह देख रही है, उसकी रक्षा का क्या उपाय है? किसी भी तरह हम इसे बचाने का प्रयत्न करते हैं तो तुम्हारी ओर से यह शिकायत होती है कि हम तुम्हें मारते हैं।

बेन्थल—तुम इञ्चकेप की सम्पत्ति ले लो और अपने उद्योग-धन्धे की रक्षा करो। सरकार खास क़ानून बनाकर ऐसी सम्पत्ति अपना ले तो हमें कोई आपत्ति न होगी। रक्षा करने के और भी उपाय हैं। इस देश में विदेशी रंग के बहिष्कार के लिए खास ऐक्ट बना हुआ है। उसमें लैसन्स लेने का ऐसा विधान है कि विदेशी रंग के व्यापार के लिए वह मिल ही नहीं सकता। तुम भी कुछ ऐसे ही नियम बनाकर अपने उद्योग-धन्धों की रक्षा कर सकते हो।

मैं—हमें नाम से नहीं, काम से मतलब है। कोई भी अच्छा रास्ता बताओ, हम उसे मान लेंगे। यह जरूर है कि हमारे यहाँ एक दल कानून-बहिष्कार का पक्षपाती है, पर हम उसे मना लेंगे।

बेन्थल—समझौते की पहली सीढ़ी है हमारे व्यापार-सम्बन्धी अधिकारों का सुरक्षित हो जाना।

मैं—अंग्रेज़ व्यापारियों के प्रतिनिधि तुम हो, कांग्रेस के प्रतिनिधि गांधीजी हैं। तुम दोनों एकत्र होकर बातें करलो। अगर समझौता हो जाये तो तुम उनका पूरा साथ दो। न हो सके, कान्फ्रेंस निष्फल हो जाये, तो हम लोग अपने-अपने घर की राह लें।

बेन्थल—मेरी भी यही राय है।

मैं—अब जितने विषय हैं उन्हें एक-एक करके लो और प्रत्येक के सम्बन्ध में अपनी राय ज़ाहिर करो।

बेन्थल—फौज के बारे में मेरी कोई वक़त नहीं, इसलिए मैं कुछ कहना नहीं चाहता। पर, हाँ, हमारी ओर से कोई टस-से-मस होने को तैयार नही है।

मैं—मैं तुम्हें यह कह देना चाहता हूँ कि गांधीजी भी इस विषय में टस-से-मस होने को तैयार नहीं हैं। पर तुम उनकी बात तो सुन लो कि वह क्या चाहते हैं, अधिकार का वह क्या अर्थ करते हैं।

बेन्थल—मैं इतना ज़रूर कहूँगा कि फ़ौज के लिए हठ करना ठीक न होगा। आखिर किसी राष्ट्र के के जीवन में दस-बीस बरस कितने दिन होते हैं!

मैं—बेशक, मगर यह तो पक्का हो जाये कि

इतने दिनों बाद हमारा पूरा अधिकार हो चलेगा।

बैन्थल—इसकी बातें होंगी। अब मैं कर्ज की बात लेता हूँ। मेरी सलाह है कि भूलकर भी तुम क़र्ज़ चुकाने से इन्कार मत करना।

मैं—हम इन्कार तो करते नहीं। हमारा तो यह कहना है कि न्याय से हम जिसके देनदार साबित न हों, वह हम न दें।

बेथल—जो हो चुका, हो चुका। जो कर्ज़ है, उसे क़बूल कर लो। हाँ, यह हो सकता है कि झगड़ा मिटाने के लिए इग्लैण्ड तुम्हें एक सालाना रकम दे दिया करे।

मैं—मतलब रुपये से है, चाहे वह किसी भी रूप में मिले। इन दोनों बातों पर हम लोग बहुत कुछ सहमत जान पड़ते हैं। अब आर्थिक संरक्षणों की बात लो। हमारी स्वतन्त्रता को नियंत्रित करने के दो उद्देश्य हो सकते हैं—या तो हमारा भला चाहते हो या अपने हित या स्वार्थ को सुरक्षित रखना चाहते हो। अगर तुम यह साबित कर दो कि तुम जैसा नियन्त्रण चाहते हो, वह हमारी भलाई के लिए है तो हम तुम्हारी बात मान लेंगे। पर तुम्हीं विचारकर देखो कि वैसी परिस्थिति में हम अपनी क्या उन्नति कर सकगें,

अपने ग़रीब भाइयों को क्या आराम पहुँचा सकेंगे ? भारत सरकार का सालाना बजट प्रायः १३० करोड़ रुपये का होता है। रेलवे, फ़ौज, कर्ज़ और पेंशन इत्यादि में प्रायाः ११० लग जाते हैं और इनपर तुम अपना अधिकार चाहते हो ! फिर हमें जो स्वतन्त्रता मिली, वह कुल २० करोड़ के लिए। अगर हमने कोई भी टैक्स घटाना चाहा, तो वाइसराय झट कूद पड़ा और हमें रोक दिया। ऐसे स्वराज्य से क्या लाभ ? तुम हिसाब करके देख लो कि क्या हमें देते हो और क्या अपने हाथ में रखते हो ?

बेन्थल—फ़ौज का ख़र्च बेशक बहुत ज्यादा है। मैं उसके घटाने के पक्ष में हूँ।

मैं—शायद तुम यह मंजूर करोगे कि इस फ़ौज के ख़र्च का कुछ हिस्सा इंग्लैण्ड से मिलना चाहिए।

बेन्थल—मैं मंजूर करता हूँ।

रेलवे-विभाग के सम्बन्ध में उसने कहा कि उसे व्यापार की तरह चलाया जाये; भारत--सरकार को केवल अन्तिम निर्णय करने अधिकार रहे। रिज़र्व बैंक के बारे में पूछा कि तुम क्या इसे पसन्द करते हो कि वह राजनैतिक दलबन्दी के प्रभाव में रहे ?

मैंने कहा कि "मैं सरकार के लिए पूरी स्वतन्त्रता

गाधीजी पूज्य मालवीयजी और सरोजनी नायडू

चाहता हूँ। जिस तरह यहाँकी सरकार ने गोल्ड स्टैण्डर्ड जब चाहा छोड़ दिया उसी तरह हमारी सरकार को भी यह अधिकार होना चाहिए कि देश के लिए, जो उचित समझे, करे।"

बेन्थल—ठीक है, पर वाइसराय की मंजूरी से करे।

मैं—मेरी राय है कि वाइसराय की मंजूरी का यह अर्थ न हो कि वह बात-बात में दख़ल दिया करे। पर इस विषय में भी गांधीजी ही प्रामाणिक रूप से कुछ कह सकते हैं।

बेन्थल—इस मामले में तीन भागीदार हैं: देशी नरेश, सरकार और ब्रिटिश भारत। अगर तीनों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था हो जाये, तो सारा प्रश्न हल हो चले।

मैं—सरकार के प्रतिनिधित्व का क्या अर्थ?

बेन्थल—जबतक पूरे अधिकार नहीं मिल जाते तबतक कुछ ऐसी व्यवस्था आवश्यक है।

मैं—पर कौन कह सकता है कि जो व्यवस्था थोड़े समय के लिए की जायेगी वह स्थायी न हो चलेगी? ख़ैर, इन बातों पर आगे विचार होने का क्या रास्ता है।

बेन्थल—फ़ुरसत हो तो मंगलवार को गांधीजी, तुम, मैं, कार और कैटो मिलकर पहले व्यापार-संबंधी अधिकारों के विषय में कुछ निर्णय कर लें। उसके बाद आर्थिक संरक्षणों के विषय में ब्लैकेट, स्ट्राकोश इत्यादि मिलकर बातें कर लेंगे।

: २० :

६ अक्तूबर, '३१

लन्दन

आज शाम को इंडिया आफिस में सर हेनरी स्ट्राकोश के साथ 'दंगल' हुआ। सभापति का आसन पहले तो भारत-सचिव सर सेमुअल होर ने ग्रहण किया, पर मंत्रिमण्डल की मीटिंग थी, इसलिए सर रेजिनल्ड मैंट को अपना पद देकर वह कुछ ही मिनिट बाद चलता बना। और बहुत-से लोग उपस्थित थे—गांधीजी, सर पुरुषोत्तमदास, मि० जिन्ना, सर मानिकजी, सर फ़ीरोज़शाह सेठना, के. टी. शाह, प्रो० जोशी, रंगास्वामी अय्यङ्गार, इत्यादि, इत्यादि। गांधीजी कोई ७ बजे कार्य्यवश उठकर चले गये। ५॥ बजे से कार्रवाई आरम्भ हुई। सरकार की ओर से सर हेनरी स्ट्राकोश ने वक्ता का काम किया और अपनी ओर से मैंने। ब्लेकेट भी मौजूद था, पर कुछ बोला नहीं। स्ट्राकोश ने पहले तो संसार की परिस्थिति का दिग्दर्शन कराया, फिर भारतवर्ष की बातें करने

लगा। उसकी सबसे बड़ी दलील यही थी कि अगर एक्सचेंज १-६ स्टर्लिंग पर न बाँध दिया गया होता तो न जाने लुढ़कते-लुढ़कते कहाँ जाकर दम लेता और न-जाने सरकार को कहाँतक नोट छपाकर अपना काम चलाना पड़ता। मैंने जब पूछा कि आखिर ठहराने के लिए तुम्हारे पास साधन क्या हैं, तब उससे कोई उत्तर न बन पड़ा। उसने अधिकांश समय मेरी उन दलीलों का जवाब देने में लगाया जो मैंने आर्थिक सुधार (मॉनीटरी रिफ़ार्म) नाम की पुस्तिका में पेश की हैं। मैंने कहा कि मैं बात-बात पर बहस करने को तैयार हूँ,पर मैं यह कह देना आवश्यक समझता हूँ कि उस पुस्तिका में मैंने जो मत प्रकट किया है, वह मेरा अपना है, भारतीय व्यापारी-वर्ग का नहीं। यहाँ जो लोग आये हैं वे भारत-सरकार की नीति के विषय में कुछ कहने-सुनने आये हैं, इसलिए उस विषय को छोड़कर मेरी पुस्तिका की समालोचना में समय लगाना इसके साथ अन्याय करना है। फिर भी स्ट्राकोश ने अपना विचार न बदला। खैर, अच्छी बहस हुई। मैंने लिखा था कि एक्सचेंज की दर उठाने का वास्तविक उद्देश्य अंग्रेज़ सिविलियन और व्यवसायी को लाभ पहुँचाना था। यह बात इन लोगों को खूब चुभी

और स्ट्राकोश कहने लगा कि इसे किस तरह प्रमाणित कर सकते हो? सर पुरुषोत्तमदास ने कहा कि यह क़िस्सा तो लम्बा-चौड़ा है, और इसे सुनने-सुनाने के लिए समय चाहिए। खाने-पीने का वक्त हो रहा था, लोगों को अपने-अपने कामों से जाना था, इसलिए चर्चा स्थगित की गयी। मुझे ऐसा जान पड़ा कि स्ट्राकोश अपने विषय का पूरा पंडित है, पर बेईमान नहीं है, इसलिए संभव है, या तो फिर इसकी चर्चा ही न हो या ब्लैकेट जैसे आदमी को सरकारी पक्ष के समर्थन का काम सौंपा जाये। स्ट्राकोश अच्छी तरह जानता है कि सरकार की ओर से पेश करने लायक़ कोई जोरदार दलील नहीं है। वह करे तो क्या? बोला कि तुमने बारबार कहा है कि हमारा सोना उड़ा दिया। वास्तव में सरकार ने उड़ाया नहीं, हिन्दुस्तान की जो ज़िम्मेदारी थी उसे पूरा किया। मैंने पूछा, इंग्लैण्ड की जो ज़िम्मेदारी थी—यहाँ क्या किया? उसने कहा—मगर इंग्लैण्ड हिन्दुस्तान जैसा दूसरों का देनदार नहीं है। मैंने उत्तर दिया—मैं इसे मानता हूँ, पर दो बातें हैं। इंग्लैण्ड वैसे देनदार न हो, पर यहाँ एक्सपोर्ट से इम्पोर्ट ज्यादा है। हमारा देश देनदार है, पर वह इम्पोर्ट से एक्सपोर्ट ज्यादा करता

है, यह तुम्हें न भूलना चाहिए। साथ ही, यह भी ध्यान में रखने की बात है कि हम अपने उद्योग-धन्धों की उन्नति कर, अपनी उत्पादन-शक्ति बढ़ाकर ही अपना देना चुका सकते हैं। फिर हमारी नीति, कौन-सी होनी चाहिए—उद्योग-धन्धों को बढ़ानेवाली या उनका सत्यानाश करनेवाली? स्ट्राकोश फिर निरुत्तर रह गया।

: २१ :

७ अक्तूबर, '३१
लन्दन

आर० टी० सी० में अबतक क्या हुआ है, ऐसा पूछा जाय तो यही कहना होगा कि कुछ भी नहीं। अल्पसंख्यक जातियों का झगड़ा अभी निवटना बाक़ी है। स्वराज-विधान के सम्बन्ध में एक चावल भर भी प्रगति अबतक नहीं हो पायी है, तो भी यह कहा जा सकता है कि धीरे-धीरे हम आगे वढ़ रहे हैं। गांधीजी की मैत्री फैलती जा रही है, लोगों से बातें होती रहती हैं और हमारे कार्य को कुछ-न-कुछ नया स्वरूप रोज मिलता रहता है। अल्पसंख्यक जातियों के समझौते की कहानी अगले पन्नों में मिलेगी। आज गांधीजी, सर पुरुषोत्तमदास, बेन्थल, कार और मैं पाँचों बैठे और मशविरा शुरू कर दिया। संख्या के हिसाब से शकुन ठीक हुआ, क्योंकि पंच पाँच ही होते हैं, हम भी पाँच थे। तीन बातें हम लोगों ने आपस में तय कीं—

(१)—स्वराज में अंग्रेजों के साथ किसी प्रकार का भेद-भाव न हो।

(२)—जातीय भेद-भाव का खयाल किये बिना स्वराज-सरकार भारतीय उद्योग-धंधों को संरक्षण दे। ऐसे संरक्षण में ध्येय अमुक दूकान या व्यवसाय को संरक्षित करना ही होगा, न कि काले-गोरे का भेद करना।

(३)—आज की सरकार से किसी व्यवसायी ने बेईमानी से कोई स्वत्व प्राप्त कर लिये होंगे तो उनकी जाँच-पड़ताल का हक़ स्वराज-सरकार को होगा।

वार्तालाप के अन्त में तय हुआ है कि यह सिलसिला आगे चलेगा और इन्हीं लोगों द्वारा ब्लैकेट, स्ट्राकोश इत्यादि से आर्थिक विधान के सम्बन्ध में समझौता होगा जिसे, आशा की जाती है, यहाँकी सरकार भी स्वीकार कर लेगी।

: २२ :

८ अक्तूबर, '३१

लन्दन

आज सुबह गांधीजी सैंकी और हर्बर्ट सैमुअल से मिले। बातों का सारांश इतना ही है कि अभी उन्होंने लम्बी आशा नहीं दी है। सैंकी ने कहा कि तुम्हें खाली हाथ न जाने देंगे, किन्तु सैंकी मिठबोला भी है। गांधीजी कहने लगे कि होर यदि ऐसी आशा दिलाये तो उसकी ज्यादा कीमत की जानी चाहिए। किन्तु उसने ऐसी आशा नहीं दिलायी है।

मैंने गांधीजी से आज साफ़ ही पूछा कि आपको क्या आशा है? कहने लगे कि खाली हाथ जाना होगा। मैंने कहा, पर सम्भव है कि इतना मिल जाये, जिससे आपको लड़ना न पड़े। कहने लगे हाँ, ऐसा सम्भव है और उसीका प्रयत्न कर रहा हूँ। होर ने कहा है कि हमें तो कई दिनों तक आपसे बातों का सिलसिला रखना होगा। यह स्पष्ट है कि अब आर० टी० सी० का महत्व नहीं है। जो काम होना है वह

भी भीतर-ही-भीतर होगा। इर्विन ने लिखा है कि मुझसे मिले बिना हर्गिज़ न तोड़ना। इन्होंने भी लिख दिया है, 'तथास्तु'।

यहाँके कोई फ़ौजी अफ़सर ग़दर के ज़माने में लूटपाट करके हिन्दुस्तान से कुछ जवाहरात ले आये थे। ज्यादा क़ीमती नहीं, पर कुछ मूल्यवान तो थे ही। पीढ़ी-दर-पीढ़ी वह चीज़ उनके वंश में चली आती थी। अब गाँधीजी यहाँ आये तो उनकी ख्याति सुन-कर उस वंश के लोगों को लगा कि गांधीजी के देश का हराम का माल रखने से तो हमारा नाश हो सकता है। आज उनके कुटुम्ब की स्त्रियाँ आयीं और एक हार जो पुखराज का था गांधीजी के चरणों में रख-कर कहने लगीं—हमारे पुरखे लूटकर भारत से यह लाये थे, बहुत दिन रखा, अब आपके तप का बखान सुना तो रखने की हिम्मत नहीं होती। गांधीजी ने हार को स्वीकार कर लिया। तप का ही यह चमत्कार है, वर्ना भेड़िये के मुँह में गया ग्रास वापस नहीं आता।

: २३ :

९ अक्तूबर, '३१
लन्दन

अल्पसंख्यक-कमेटी की कहानी सारी-की-सारी दुःखद है। एक सप्ताह तक यह नाटक चला और अन्त में जहाँ-के-तहाँ। वही सीटों का झगड़ा, वही अविश्वास! अन्त में छठे दिन किसीने प्रस्ताव किया कि कुछ पंच हों, उन्हें मामला सौंप दिया जाये। गांधीजी ने कहा, मुंजे! तुम्हारी क्या राय है? उत्तर मिला, मुसलमानों से पूछिए। मुसलमानों से पूछा तो कहने लगे कि सलाह करके बतायेंगे। रात को १० बजे फिर सभा बैठी। मुसलमानों ने कहा कि हमें मंजूर है, तो डा० मुंजे भी कहा कि मंजूर है—किन्तु सवाल उठा कि पंच कौन हो? डा० मुंजे बोले—पंच कोई बाहर का आदमी हो। मुसलमानों ने कहा, नहीं, मेंबरों में से कोई हो। इस सारे नाटक को देखकर मुझे तो दुःख होता था। दोनों दलों में परस्पर के अविश्वास के अलावा और भी बात आ गयी है। नतीजा यह हुआ है कि गांधीजी का बोझ

बढ़ता जाता है। दिन-रात काम करते हैं, ३ घंटे से ज्यादा सोने को नहीं मिलता। इनके बल पर ही यहाँ थोड़ी पूछ है, जिसपर तुर्रा यह कि हर तरह से हमारे ही लोग इन्हें तंग करते रहते हैं। मुसलमान करें तो हम ला-इलाज हैं, किन्तु हिन्दू भी करते हैं। जिनसे आशा थी उन्होंने भी सहायता नहीं की। मैंने गांधीजी से स्पष्ट कहा कि आपको करना है सो करें। कहने लगे—"सो तो करूँगा ही, किन्तु मुसलमान भी तो कहाँ मेरा साथ देनेवाले हैं! और साथ देने का जबतक वादा न करें तबतक मैं आत्म-समर्पण करके क्या करूँ?" आज आख़िर भरी सभा में गांधीजी ने कह दिया कि यह सम्मेलन असल पंचों का नहीं है, इसमें नक़ली पंच हैं। बस इतना कहा, मानो मधुमक्खियों के छत्ते को छेड़ दिया। शफ़ी आपे से बाहर। अम्बेडकर ने तो ज़हर ही उगल डाला। कहने लगा, "महात्मा को झूठा दावा करने की आदत है। छः करोड़ अछूत तो मुझे ही मानते हैं, गांधीजी को तो कोई पूछता भी नहीं।" प्रधान-मन्त्री ने भी गांधीजी को खोटी-खरी सुनायी। मेरे बदन में तो आग-सी लग गई। गांधीजी कहने लगे, शान्त हो, हमारा रास्ता ठीक है, दूसरे क्या कहते हैं, इसकी क्या चिन्ता है?

: २४ :

१४ अक्तूबर, '३१

लन्दन

इस सप्ताह का हाल तो अत्यन्त निराशा-जनक है। गत आर० टी० सी० में कुछ तो आशा थी, पर इस बार तो सबके मुँह फीके हैं। माया-जाल तो अंग्रेजों ने ही बिछाया था, किन्तु उसमें हमारे अच्छे-अच्छे लड़वैये फँस गये हैं। गांधीजी छटपटाते हैं, किन्तु कोई असर नहीं हो रहा है। शायद गांधीजी कुछ उग्रता करें तो कुछ नया सिलसिला निकल आये। अभी गांधीजी भी 'सब धान बाईस पसेरी' हो गये हैं। वही आदर है, वही सत्कार है। किन्तु "देबा लेबा नै तो भाथा रामजी को नाम"। स्वराज का जो नक़शा खींचा गया था, वह भानमती का पिटारा था। राजा शामिल हों, अंग्रेज़ भीतर हों, हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी, मजदूर, व्यापारी, ऐंग्लो-इंडियन, अछूत सबको अलग-अलग हक़ मिलें, सबकी सम्मति हो, तब विधान बने। जाति-पाँति की कई कतर-ब्योंतें

की गयीं और अब हमसे कहते हैं, पहले आपस में समझौता करो। दुनिया में जो कहीं न हुआ, उसकी हमसे आशा की जाती है!

क्या इंग्लिस्तान में ऐक्य है? कुछ भी हो हमारे लिए तो हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य जरूरी है। इस समय सारा-का-सारा झगड़ा पंजाब का है। जब कभी कोई समझौते की आशा होती है, तब सरकारी दूत दौड़ने लगते हैं। हिन्दुस्तान से खास अंग्रेज आके बैठे हैं, जो हिन्दू को समझाते हैं 'तुम लुट रहे हो'; मुसलमान को समझाते हैं 'तुम मरे जा रहे हो' और सिक्ख को अलग डराते हैं। मुसलमान कहते हैं, पंजाब में हमारा बहुमत है, वह हमें मिले। हिन्दू कहते हैं, क़ानूनन बहुमत का सिद्धान्त अन्यायमूलक है, ऐसे तुम्हारा बहुमत हो तो हम खुशी से स्वीकार करें। तब एक नयी स्कीम निकली। पंजाब में से अम्बाला, जिसमें अधिक हिन्दू हैं, निकाल लिया जाये। इसका नतीजा यह होता है कि पंजाब में मुस्लिम बहुमत ६३ फीसदी बन जाता है और फिर मुसलमान पृथक् निर्वाचन या सुरक्षित सीटों की ज़िद नहीं करते। सिद्धान्तरूप से हिन्दू विरोध नहीं कर सकते, किन्तु जहाँ इस स्कीम की चर्चा चली, कुछ नेता कहने

लगे, "राम-राम ! यह तो और भी बुरा !!" पंचायत की बात चली। गांधीजी ने खूब ज़ोर लगाया कि "पंडितजी, आप पंचायत मान लें। यद्यपि मुसलमान राज़ी नहीं हैं तो भी लोगों पर जो बुरा असर पड़ा है, कम-से-कम वह तो रफ़ा हो जायेगा।" पर पंडितजी पंचायत के लिए तैयार नहीं। यहाँ लोगों पर बुरा असर पड़ा है। उन्हें कहने का मौका मिल गया है कि जब तुम्हारा मेल ही नहीं तब हम क्या करें ? स्वराज की लुटिया तो डूब चुकी, ऐसा अभी मालूम होता है। लोग जहाज़ में स्थान ख़रीदने लग गये हैं। जहाँ जीवन-मरण का प्रश्न है वहाँ ऐसी लड़ाई अत्यन्त घृणास्पद मालूम होती है। पंडितजी का चेहरा भी उतर गया है और उनके क्लेश का कोई ठिकाना नहीं। इस सप्ताह पंडितजी, गांधीजी, जिन्ना और सप्रू के बीच मैंने काफ़ी दौड़-धूप की और अब थक गया हूँ। मुसलमानों को न हमारा विश्वास है, न सीधी बातें है, न तय होने पर ही पूरा साथ देने को तैयार है। किन्तु उनकी चर्चा फ़िज़ूल है। गांधीजी 'आत्म-समर्पण' कर देना चाहते हैं, बशर्ते कि मुसलमान उनका राष्ट्रीय मार्गों में साथ दें। पर राष्ट्रीय माँगों में साथ देने की उनकी हिम्मत कहाँ !

धीरे-धीरे अब राजा भी खिसकने लगे हैं। भानमती के पिटारे में कई साँप बन्द थे। वे निकल-निकल भागते हैं। महाराजा बीकानेर कहते हैं, हम साथ हैं, किन्तु—बस 'किन्तु' पर अड़ जाते हैं। अछूतों और दूसरे लोगों को तो अभी चिल्लाने का अवसर ही नहीं मिला है। हमारी इस सप्ताह में खूब हँसी हुई है। ऐसी निराशा के भँवर में गांधीजी प्रसन्न मुख हैं। कहने लगे, 'शर्मिन्दा बनके नहीं जायेंगे, चिन्ता मत करो।' गांधीजी भीतर-ही-भीतर मिलते रहते है और एक तरह से मैत्री बढ़ रही है। इस मैत्री का शीघ्र कोई फल होनेवाला नहीं है। जवाहरलालजी के बहादुरी के खत आते रहते है।

कई चित्रकार, कई शिल्पकार बैठे गांधीजी के चित्र और मूर्तियाँ बना रहे है। गांधीजी बच्चों से खेलते रहते है। वही रंग, वही ढंग। न कभी यहाँ से उन्हें आशा थी, न अब निराशा है। जिन्हें आशा थी, उनके ही चेहरे सूखे हैं।

बेंथल से आज रात को फिर बातें चलेंगी। सिलसिला जारी है। इंडिया आफिस में एक्सचेंज का दंगल फिर परसों होगा।

गाधीजी फाकस्टन बन्दर पर

गांधीजी, सर सप्रू जी के साथ

: २५ :

१६ अक्तूबर, '३१
लन्दन

हिन्दू-मुसलमान-समस्या का ताज़ा हाल अब यह है कि मि० जयकर और डा० मुंजे दोनों ही कुछ ठंडे हो रहे हैं। सिक्ख नहीं मानते, पंडितजी कुछ दृढ़ता-पूर्वक नहीं कहते। कार्बेट की स्कीम है कि अम्बाला डिवीज़न पंजाब से निकाल लिया जाये, जिसका परिणाम होता है कि पंजाब में हिन्दू प्रति सैकड़े प्रायः २२, सिक्ख १४, मुसलमान ६३ रह जाते हैं। मुसलमान शायद इस स्कीम को संयुक्त चुनाव के साथ और बिना अलग "कुर्सी" रखवाये मान लें। पर झगड़ा वैसे-का-वैसा ही है। महात्माजी को यह स्कीम पसन्द आयी है और शायद इसीका सिलसिला अब चलेगा। आज रात को और दोपहर को भी मुसलमानों से महात्माजी बातें करेंगे।

नरेशों का हाल भी बुरा है। संशय से भरे पड़े हैं। उनसे भी अलग बातें होंगी।

होर से फिर महात्माजी कल मिले। जितना ज्यादा मिलते हैं, उतना ही उससे उनका प्रेम बढ़ता जा रहा

है, हालाँकि दोनों उत्तर-दक्षिण हैं। परसों होर ने भरी सभा में कह दिया कि फौज हम हर्गिज़ नहीं देंगे। उसपर महात्माजी ने कहा, शाबाश! स्पष्ट-वक्ता हो तो ऐसा हो। कल होर ने पूछा, मैंने आपको नाराज़ तो नहीं किया? महात्माजी ने कहा, "नाराज़ नहीं, तुमने मुझे राज़ी किया; क्योंकि मुझे पता लग गया कि तुम ईमानदार हो, लल्लो-चप्पो नहीं करते। किन्तु मैं यह कहना चाहता हूँ कि मुझे अब यहाँ क्यों बैठा रक्खा है? मुझे भेज दो।" होर ने कहा है कि "इतनी जल्दी न करें, मै अगले सप्ताह में स्पष्ट कर दूँगा कि हम कहाँतक जाने को तैयार हैं। आपने तो कोई बात छिपा नहीं रक्खी। मैं भी कोई बात छिपाके नहीं रखूँगा।"

महात्माजी कहते थे कि यह आदमी तो सोना है और इसीसे मेरा काम बनेगा। सप्रू वग़ैरा तो सिर कूटते हैं कि यह राक्षस कहाँसे आगया! उनकी दृष्टि में बेन अच्छा था इनके लिए होर अच्छा है। मुझे मालूम होता है, इतनी जल्दी महात्माजी को नहीं भेजेंगे, किन्तु महात्माजी जो चाहते है सो नहीं मिलेगा। मेरा तो अभी भी वही खयाल है कि दस आने मिलेंगे, छः आने के लिए युद्ध होगा।

: २६ :

२२ अक्तूबर, '३१
लन्दन

आर० टी० सी० के कार्य में तो कोई उन्नति नहीं हुई है। दिन-दिन स्पष्ट होता जाता है कि कुछ होने का नहीं। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य बना हुआ है और इसको यहाँ काफी तूल दे दिया गया है। प्रायः यही कहा जाता है कि जब तुम आपस में ही समझौता नहीं कर सकते, तो हम क्या करें? महात्माजी को कितने ही लोग उलहना देते हैं कि आप समझौता क्यों न कर लें, किन्तु महात्माजी न तो मुसलमानों की नीयत साफ देखते हैं, न हिन्दू-सभा का उत्साह पाते हैं। इसलिए कुछ अवहेलना-सी कर रहे हैं। मुसलमान इनकी राष्ट्रीय मांगों को स्वीकार कर लें और अन्य छोटी-छोटी दलबन्दियों का साथ न दें तो समझौता कर लें—या तो हिन्दू-सभावाले कार-वेट की या अन्य किसी स्वीकार करने लायक स्कीम का समर्थन करें तो समझौता हो।

बेन्थल से भी कोई नई बात नहीं हुयी। जो पहले हो चुकी, उसीका पिष्टपेषण जारी है। वह भी समझता है कि हम कमजोर हैं; इसलिए प्रगति धीमी है।

होर से महात्माजी की फिर बातें हुईं, किन्तु अबतक कोई नतीजा नहीं निकला। होर ने वादा किया कि अगले हफ्ते स्पष्ट बतायेगा कि सरकार कहाँतक जा सकती है? महात्माजी कुछ अधीर और उतावले-से होने लगे हैं, क्योंकि उनको समय की बरबादी अखरती है। इर्विन ने कहा था कि कोई भी महत्त्वपूर्ण क़दम रखने से पहले पूछ लेना। कल इर्विन से मिलकर महात्माजी ने कह दिया कि अब मैं यहाँसे भागनेवाला हूँ और एक-दो दिन में ही गोली चला दूँगा। इर्विन ने कहा, ऐसा नहीं हो सकता। अभी तो पाव में 'पूणी' भी नहीं कती। इसके माने यह भी हो सकते हैं कि कुछ आशा है। चुनाव की धूम के मारे यहाँ लोग व्यस्त हैं। इनकी क्या स्थिति रहेगी, सो भी इन्हें पता नहीं। इसलिए २७ ता० को अपना तलपट बाँधकर बातें करेंगे। इस समय तो चाल यह है कि कान्फ्रेंस को तो बर्खास्त करें और एक नया कमीशन हिन्दुस्तान भेज दें। अकबर ने कहा था कि "खींचो न कमानो को न तलवार निकालो,

सौ

जब तोप मुक़ाबिल हो तब अखबार निकालो।" अंग्रेज़ों का यह हाल है कि 'गर सामान बगले झाँकने का है तो कमीशन बैठा दो।' बस यही चाल है, मगर महात्माजी माननेवाले नहीं हैं। होर समझाने की कोशिश करता है, पर महात्माजी सिर हिलाते हैं।

मेरा ऐसा खयाल है कि यह नही मानेंगे तो वे कुछ आगे बढ़ेंगे, पर अधिक आशा नहीं है। महात्माजी स्वयं समझौते के पक्ष में हैं, पर समझौता हो तो किससे ? कल कहते थे कि शायद हिन्दुस्तान पहुँचते-पहुँचते लड़ाई छिड़ जाये। मुझे ऐसा मालूम होता है कि ऐन मौक़े पर कोई घटना घट जायेगी—हालाँकि अभी तो कोई अच्छी सूरत नज़र नहीं आती।

साथ ही यह जान लेना चाहिए कि यहाँ आने से हमें काफ़ी लाभ हुआ है। महात्माजी की मैत्री तो दूब की तरह फैलती है। शहर के सेठों से कल सुना कि लोगों पर प्रभाव पड़ा है। कहते हैं, गांधी आदमी तो अच्छा है। परसों यहाँकी ठाकुरों और सेठों की सम्मिलित सभा में गांधीजी को बुलाया था। सारी राणखम्माण मौजूद थी। उनका असर अच्छा हुआ। बीज बोया गया है और फिर लड़ाई छिड़ी तो यहाँ

के बहुत लोग सहानुभूति जतानेवाले होंगे।

इंडिया आफ़िस का शास्त्रार्थ समाप्त हो गया! गांधीजी ने अपना निर्णय हमारे पक्ष में दे दिया। गांधीजी इस मसले को छोड़ना नहीं चाहते हैं। ज़ोर से कहनेवाले हैं कि तुम मुझे नहीं समझा सके। या तो मेरा सन्तोष करो, नहीं तो मैं अपनी राय तुम्हारे ख़िलाफ़ दूँगा।

चित्र उतारनेवाले, मूर्ति गढ़नेवाले, हस्ताक्षर करानेवाले और वक्तव्य लेनेवाले गांधीजी के पास उसी रफ़्तार से आ रहे हैं। मुलाक़ातों का ताँता भी जारी है। वही धूमधाम है। ख़ाली 'स्वराज' नहीं मिला है।

यहाँ सर्दी ४३ डिगरी तक पहुँची है। अभी तो नवम्बर आना बाक़ी है।

गांधीजी को काम इतना रहता है कि रात को १ बजे सोते हैं—४ बजे उठ जाते हैं। एक दिन कहते थे, पता नहीं किस दिन बीमार पड़ जाऊँ। सोने को समय मिले तो फिर कोई चिन्ता नहीं। कपड़े उतने ही चलते हैं। कम्बल बढ़ाने को कहा तो कहते हैं, निभ जाती है। पंडितजी को तो जाड़ा ज्यादा सता रहा है। कपड़े भी यहाँ नये ख़रीदे हैं स्वास्थ्य उनका

अच्छा नहीं है। मानसिक पीड़ा भी तो है। इस समय उनकी यह स्थिति है कि न गांधीजी को छोड़ना चाहते हैं; न मुँजे और नरेन्द्रनाथ को ही।

: २७ :

२३ अक्तूबर, '३१

लन्दन

कल कुछ विशिष्ट लोगों से बातचीत हुई। कहते थे कि गांधीजी का प्रभाव अच्छा पड़ा है। इनकी सलाह थी कि यहाँ के सेठों को हम समझा सकें तो काम बहुत-कुछ आगे बढ़ सके। ऐसे कुछ सेठों से मिलने का प्रबन्ध कर रहा हूँ। कल सर पुरुषोत्तमदास की लेटन से बातचीत हुई थी। यह 'अर्थ-शास्त्री' (इकनामिस्ट) नामक पत्र का सम्पादक है और 'साइमन कमीशन' का आर्थिक विषयों में सलाहकार बनकर हिन्दुस्तान गया था, उसने कहा कि हिन्दू-मुस्लिम-झगड़े को एक पंचायत के हवाले कर देंगे।

: २८ :

२१ अक्तूबर, '३१

लन्दन

राजनैतिक परिस्थिति ज्यों-की-त्यों है। कोई खास बात नहीं हुई है। पर हम लोग बिल्कुल निराश नहीं हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कन्जर्वेटिव पार्टी को चुनाव में आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। इस तूफाने-बदतमीज़ी में मज़दूर-दल तो उड़ गया—यह समझना चाहिए। पर सरकार भी सुख की नींद नहीं सो सकती। इस समय पार्लमेण्ट में उसका विरोध नाममात्र को रह गया है। यह उसके लिए उतनी ख़ुशी की बात नहीं है। विरोधी साथ भले ही न दें, पर उनसे उपकार तो होता ही है। समालोचना सीधी राह पर रखने का एक साधन है। सरकार का ज़बर्दस्त विरोध हो तो वह भयङ्कर भूलों से बहुत-कुछ बच सकती है। इस समय यह बात नहीं है, इससे सरकार को भी चिन्ता होने लगी है। कुछ लोगों का ख़याल है कि यह ज्यादा समय तक न टिक सकेगी, मेरी

अपनी राय दूसरी है। इतना मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि थोड़े ही समय में यह सरकार अपनी लोकप्रियता से हाथ धो बैठेगी। परिस्थिति इतनी ख़राब है कि उसे सुधारना कोई आसान काम नहीं। यह भी याद रखने की बात है कि मजदूर दलवाले हार जाने पर भी एक तिहाई—क़रीब ७,०००,००० —वोट पा चुके हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि मज़दूर-दल के साम्यवाद का समर्थन करनेवाले इस मुल्क में ७० लाख आदमी मौजूद हैं। ये लोग चुप रहने के नहीं। रोटी-दालवालों को इसकी गहरी चिन्ता है और मेरा ख़याल है कि सरकार हर काम में फूँक-फूँककर क़दम रक्खेगी और जहाँतक सम्भव होगा सबको सन्तुष्ट करने की चेष्टा करेगी।

हिन्दुस्तान के बारे में उनकी यह नीयत जरूर है कि, जहाँ तक हो सके, कम दिया जाये—पर कान्फ्रेंस टूट जाये, यह उनकी इच्छा नहीं जान पड़ती। फ़ौज को अपनी मुट्ठी में रखना चाहते हैं। आर्थिक मामलों में भी कुछ अधिकार चाहते हैं। गांधीजी यह चेष्टा कर रहे हैं कि हम लोगों की एक राय हो जाये। हिन्दू-मुसलमानों के बीच समझौता कराने के प्रयत्न में वह निरन्तर हैं ही, सप्रू और दूसरों के

बीच राजनैतिक एकता कराने की भी कोशिश कर रहे हैं। समझौते के लिए वह कांग्रेस की मांग से कम लेने को भी तैयार हैं—बशर्ते कि कांग्रेस की कार्यकारिणी को यह मंजूर हो। उन्हें सफलता होगी या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। इतनी सफलता उन्हें ज़रूर हुई है कि सब लोग उन्हें समझदार मानने लगे हैं।

बेन्थल से जो बातचीत चली थी, वह बीच में रुक गयी थी। शायद उन लोगों ने हमारी कठिनाइयों को देखकर उनसे फ़ायदा उठाना चाहा था। पर उसका सिलसिला फिर शुरू होनेवाला है। कल रात को बेन्थल से मेरी बातचीत हुई। उसने कहा कि हम लोग सचमुच समझौता कर लेना चाहते हैं। बस इस तरह कुछ-न-कुछ काम रोज़ हो रहा है। इंडिया आफ़िसवालों को और यहाँके सेठों को समझाने-बुझाने की कोशिश में हम लोग लगे हुए हैं। काम को आपस में बाँट लिया है। सर पुरुषोत्तमदास के साथ मैं तो आर्थिक विषयों की विवेचना में लगा हुआ हूँ। बेन्थल मुझसे कह रहा था कि जबतक हम लोगों का क्रिश के साथ कुछ समझौता नहीं हो जाता तबतक कुछ होने-जाने का नहीं। क्रिश इंडिया आफ़िस

में अर्थ-विभाग का मंत्री है। बेन्थल की बातचीत से से तो जान पड़ा कि वह हम लोगों के सहयोग का बड़ा इच्छुक है। बात दरअसल यह है कि इन लोगों को भय है कि बिना हम लोगों के सहयोग के एक्सचेंज और करेन्सी के पाँव मजबूती से जम नहीं सकते। मैंने उससे कहा कि सहयोग देने के लिए मैं हर घड़ी तैयार हूँ। अगले सप्ताह में यहाँकि अर्थ-शास्त्रियों और इंडिया आफिसवालों से बहुत-कुछ बातचीत होने का रंग दीखता है।

अगर कान्फ्रेंस टूटी नहीं तो नवम्बर के अन्ततक काम रहेगा। बाहर से तो यही जान पड़ता है कि हम लोग आगे नहीं बढ़े हैं, पर भीतर-ही-भीतर कुछ-न-कुछ प्रगति होती जा रही और काम—धीरे-धीरे ही सही—बनता जा रहा है। अगर कान्फ्रेंस टूट भी गयी तो इतना तो लाभ ज़रूर होगा कि इस बार हम-लोग जो मंज़िल तय कर लेंगे, उसे फिर तय करना न पड़ेगा।

गांधीजी आजकल २४ में ३ घंटे से ज्यादा नहीं सोते। काम-पर-काम आता ही जाता है। कहते थे कि मैं रोज़ कम-से-कम ८ घंटे सोना चाहता हूँ, पर तीन से ज्यादा समय नहीं मिलता। आर० टी० सी० की

कमेटी की मीटिंग में बैठे-बैठे झपकी लेते हैं। सप्ताह के अन्त में लन्दन से कहीं बाहर चले जाते हैं। कभी किसी पादरी के यहाँ, कभी किसी भावुक या ईश्वर-भक्त के यहाँ ठहर जाते हैं। चित्र लेनेवालों और मूर्ति बनानेवालों की संख्या घट चली है, क्योंकि बहुतों की तृप्ति हो चुकी। अभीतक गांधीजी ने कपड़ा-लत्ता उतना ही रक्खा है। मुझे आश्चर्य होता है कि यहाँकी सर्दी वह कैसे बर्दाश्त कर लेते हैं।

: २६ :

३० अक्तूबर, '३१

लन्दन

कल इंडिया आफ़िस में एक्सचेंज के सम्बन्ध में फिर कान्फ्रेंस बैठी। ब्लैकेट और स्ट्राकोश दोनों ही मौजूद थे। अपनी ओर से सर पुरुषोत्तमदास, गांधीजी, अध्यापक शाह, जोशी और मैं था। छोटी सभा होने के कारण इसे विशेष सफलता प्राप्त हुई। लोगों ने दिल खोलकर बातें कीं। स्ट्राकोश ने वही पुराना राग अलापना शुरू किया, पर ब्लैकेट ने बड़ी खूबी से उसे निरुत्तर-सा कर दिया। हम लोगों को इसपर आश्चर्य हुआ और सन्तोष भी। ब्लैकेट ने कहा कि हिन्दुस्तान के लिए इस समय चीज़ों का दाम बढ़ना बहुत हितकर है और मैं चाहता हूँ कि वह दाम फीसदी ४० तक बढ़ चले। हाँ वह यह न बता सका कि दाम कैसे बढ़ाया जाय। मैंने कहा कि रुपये को फ़िलहाल अपनी राह जाने दो और जब रिज़र्व में काफ़ी सोना इकट्ठा हो जाये, तब १ शिलिङ्ग पर इसे

बाँध दो। वह इससे सहमत न हो सका। मैंने गांधीजी से कहा कि आप अब इनसे एकान्त में बातें करें। मैंने स्ट्राकोश को भोजन के लिए अगले मंगलवार (३ नवम्बर) को निमंत्रित किया है। ब्लैकेट को भी बुलानेवाला हूँ। ब्लैकेट 'बैंक ऑव् इंग्लैण्ड' का डाइरेक्टर है और वह चाहता है कि इंग्लैण्ड में दाम फीसदी ३४ बढ़ जाये। कल बेन्थल से फिर बातें हुईं। उसने कहा कि अर्थ-विभाग की देख-रेख के लिए एक कौंसिल बना दी जाय। हम लोग सहमत नहीं हुए। पर इससे जान पड़ता है कि वह अभीतक सीधी राह पर नहीं आया है।

: ३० :

३ नवम्बर, '३१

लन्दन

होर विधान-निर्माण-परिषद् के काम में ज्यादा दिलचस्पी लेने लगा है। एक सप्ताह में परिस्थिति बहुत कुछ स्पष्ट हो जायेगी।

गांधीजी इन लोगों की अवहेलना कर मुसलमानों से समझौता कर लेते; पर उनकी तीन शर्तें हैं :

(१) समझौता कांग्रेस को मंजूर हो।

(२) राष्ट्रवादी मुसलमान और सिख भी उसे मंजूर करें।

(३) मुसलमान उनकी प्रत्येक राष्ट्रीय माँग का समर्थन करने को तैयार हों।

गांधीजी का यह भी कहना है कि अछूत, यूरोपियन, ऐंग्लो-इंडियन और देशी ईसाई—इनको पृथक् निर्वाचन का अधिकार न दिया जाये। मुसलमान न तो इसका समर्थन करते हैं, न उनकी दूसरी राष्ट्रीय माँगों का। इसलिए गांधीजी इस प्रश्न की ओर विशेष

गाधीजी मौलाना शौकत अली के साथ

गांधीजी दर्शकों के बीच

ध्यान नहीं दे रहे हैं। वह जानते हैं कि उनकी ताक़त क्या है। उन्हें अच्छी तरह मालूम है कि मुसलमानों को उनसे जितना मिल सकता है, उतना सरकार या पंचायत से नहीं। उनका विश्वास है कि आज या कल मुसलमानों को उनके पास जाना ही होगा। सरकार से तो उन्होंने कह दिया है कि तुम जजों से इसका फ़ैसला करा लो—पर मुसलमानों को यह मंजूर नहीं है। मालूम नहीं, सरकार क्या करेगी।

अपने कुछ हिन्दू नेताओं से मेरी शिकायत है कि उन्होंने गांधीजी के हाथ में इस मामले को न छोड़कर इस आक्षेप के लिए गुञ्जाइश कर दी कि न तो मुसलमान उनका नेतृत्व स्वीकार करते हैं, न हिन्दू; फिर महात्मा प्रतिनिधि हैं तो किनके? अगर हम लोगों ने एकमत हो कर यह कह दिया होता कि 'गांधीजी जो कुछ करेंगे हमें स्वीकार होगा' तो हिन्दू-मुस्लिम-समस्या हल होती या नहीं, यह दूसरी बात है, पर इसमें सन्देह नहीं कि इससे हमारी ताक़त कहीं बढ़ जाती और हम आज दुनिया की निगाह में कहीं ऊँचे होते। इन लोगों की दलील की तह में जो भयंकर कमजोरी है, उसे ये देखने में असमर्थ हैं।

गांधीजी प्रधान-मंत्री से मिले। कोई खास नतीजा न निकला। परिस्थिति न तो आशाजनक है, न निराशाजनक।

: ३१ :

५ नवम्बर, '३१

लन्दन

इस सप्ताह महात्माजी ने मैकडानल्ड, होर और बाल्डविन से बातें कीं। बातों का नतीजा यह निकला है कि आगामी मंगल और बुध को मंत्रिमंडल भारत के विधान के सम्बन्ध मे विचार करके अपने निर्णय पर पहुँचेगा। बुध या बृहस्पति को वह अल्प-संख्यक-दल-परिषद् या विधान-निर्माण-परिषद् की बैठक बुलावेगा और प्रधान-मत्री अपनी राय खुल्लम-खुल्ला ज़ाहिर कर देगा। उसके बाद उसे हम चाहे स्वीकार करें या अस्वीकार करें या उसपर बहस करें। यह भी आशा दुराशा नहीं है कि बहस में हम और रद्दोबदल कर दें, पर यह कठिन ही मालूम होता है। हिन्दू-मुस्लिम-समस्या भी किस तरह हल हो, इसका निर्णय प्रधान-मंत्री दे देगा। इसलिए यह कहा जा सकता है कि आगामी सप्ताह में हमारा भविष्य नक्की हो जायेगा। शायद २०-२५ नवम्बर तक हम

यहाँ से कूच कर जायें। क्या होगा, यह कहना तो आसान नहीं है, किन्तु गत कान्फ्रेंस से ज्यादा आगे न बढ़ेंगे, यह स्पष्ट मालूम होता है। यह भी चाल है कि प्रान्तों को अभी से स्वातंत्र्य दे दें और केन्द्र के विधान को खटाई में डाल दें। किन्तु हम लोगों ने एक-मत से निर्णय कर लिया है कि इसे कभी स्वीकार नहीं करना। यह चाल मुसलमान और अंग्रेज़ मिल-कर रहे हैं, जिससे भविष्य में पंजाब बराबर चिल्लाता रहे कि हमें केन्द्रीय स्वराज नहीं चाहिए और इस तरह विलम्ब होता रहे।

महात्माजी साप्ताहिक विश्राम के लिए दो दिन (शनि और रवि) बाहर जाते हैं। अबकी बार पर्य्य-टन आक्सफोर्ड की ओर होगा। साथ में प्रधान-मंत्री का लड़का, लार्ड लोथियन, अध्यापक गिलबर्ट मरे आदि प्रतिष्ठित व्यक्ति रहेंगे और दो दिन आपस में बातें होती रहेंगी।

कल महात्माजी ने कुछ स्वयंभू नेताओं से कहा कि "मैंने तो प्रधान-मंत्री से कह दिया है कि ये लोग तो तुम्हारे मेहमान हैं। यदि ये प्रतिनिधि बनने का दावा करें, तो इन्हें चुनाव से आने दो। देखो, इन्हें कितने वोट मिलते हैं और मुझे कितने

वोट मिलते हैं।" महात्माजी की इस तरह बातें करने की आदत नहीं है। यह घटना प्रकट करती है कि इन लोगों ने उन्हें कैसी ठेस पहुँचायी है। कल मैंने कहा कि यह स्थिति अत्यन्त भयंकर है कि साम्प्रदायिक संस्थायें कांग्रेस की देवराणी-जेठाणी बनने की कोशिश करें। स्वराज के लिए लड़ाई तो लड़े कांग्रेस, और यहाँ आने पर ऐसे लोग कूद-कूद के कहें कि हिन्दुओं के प्रतिनिधि हम हैं, महात्माजी नहीं। फिर तो सहज ही प्रश्न उठता है कि आखिर महात्माजी किसके प्रतिनिधि हैं? इन लोगों ने संग्राम में तो कोई स्वार्थत्याग किया नहीं, अब टांग अड़ाने को और महात्माजी की तौहीन करने को यहाँ भी पहुँच गये। महात्माजी ने कहा कि "मेरी दवा तो हिन्दूसमाज को प्रिय नहीं, वह समझता भी नहीं कि मेरी दवा क्या है। गुण्डेपन की दवा गुण्डापन है, ऐसा ही वह मानता है। ऐसी हालत में जब-तक हिन्दू मेरी दवा का मर्म न समझें, हिन्दूसभा को अपने क़ब्ज़े में करना मैं मुनासिब नहीं समझता।" मैं तो यह कहूँगा कि हिन्दूसभा को चाहिए कि वह हिन्दुओं को मज़बूत बनाये; रीति-रस्म, अछूत-पन में सुधार करे, शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करे, किन्तु

राजनीति में कांग्रेस की प्रतिस्पर्धा करना भयंकर मालूम होता है। आखिर कांग्रेस ने लुटा क्या दिया? महात्माजी के 'आत्मसमर्पण' का भी तो नतीजा देख लेना चाहिए।

बाल्डविन ने तो महात्माजी से साफ़ ही कह दिया कि आप चाहते हैं सो आपको नहीं मिलेगा। मैंने महात्माजी से कहा कि यदि आठ आने भी मिलेंगे तो आपके बल पर – इसलिए आप यहाँ से हर्गिज न भागें। महात्माजी ने कहा—"मैं जानता हूँ। भागूँगा नहीं।" उनकी चाल यह है कि कम मिले तो स्वीकार नहीं करना। जितना खैंच सकें, उतना खींचकर कह देना कि जो कुछ तुम दे रहे हो, वह मुझे तो स्वीकार नहीं है।

काश्मीर के सम्बन्ध में यहाँ बड़े ज़ोरों से मुसलमानों का पक्ष है। यह ध्यान रहे कि देना न इन्हें हिन्दुओं को है, न मुसलमानों को—किन्तु पीठ उनकी ठोंकते हैं और हमसे लड़ाते हैं।

रात को एक भोज में मुझे निमंत्रण था। एक पुलिस अफ़सर, जो कभी हिन्दुस्तान में था, बगल में बैठा था। एक ओर पोलिटिकल महकमे का एक उच्च सरकारी अफ़सर बैठा था। दोनों ही अंग्रेज़ थे। पुलिसवाले ने कहा कि "हिन्दू-मुस्लिम-झगड़ा तो

फैलाया हुआ है, मैंने ख़ुद देखा है कि आज भी गाँवों में यह समस्या नहीं है।" उसने मुझे एक किस्सा सुनाया। सरहद से तीन दिन के रास्ते पर एक क़िले में इनकी फ़ौज थी। एक बनिया रसद देता था। उसके मर जाने पर इनकी फ़ौज के मुसलमान सिपाहियों ने कहा कि इसे हिन्दुस्तान जलाने को भेजना चाहिए। अफ़सर ने कहा कि—तीन दिन का रास्ता है, कहाँ भेजेंगे? यहाँ गाड़ दो। किन्तु मुसलमानों को यह पसन्द न आया। आखिर उन्होंने अपने ख़र्च से लकड़ी जुटाई, उसकी अर्थी सजाई और बैंड बजाते स्मशान में ले गये। अफ़सर मुझसे कहता था कि कई सिपाही तो रोते थे। उसने मुझसे पूछा—बताओ, हिन्दू-मुस्लिम-समस्या कहाँ है? मैंने कहा कि क्या बताऊँ, तुमने ही फैलाई है। बगल के पोलिटिकल महकमेवाले अफ़सर ने एक मुस्लिम नेता की ओर, जो भोज में शरीक था, इशारा करके कहा कि कश्मीर की आधी आँधी इस शख्स ने उठाई है। बात यह है कि यह भी करतूत सरकार की ही है। अफ़सर जानते हैं, सब लोग जानते हैं—फिर भी हमारे आदमी अन्धे हैं। अछूतों की माँग का महात्माजी विरोध करते हैं। कहते हैं कि मैं इनको कैसे अलग कर दूँ?

: ३२ :

लन्दन

६ नवम्बर, '३१

कल गांधीजी और हम सबलोग सम्राट् के मेहमान थे। हम सब क़रीब ४०० थे। कितने लोग तो देशी पोशाक में थे। मैं तो देशी पोशाक ले ही नहीं आया था, इसलिए "चिमनी" हैट ओढ़कर ही गया था। महल में बिजली की चकाचौंध—और काली पोशाकवालों के बीच गांधीजी नंगे पाँव और चद्दर ओढ़े ऐसे मालूम होते थे जैसे अमावस्या में चन्द्रमा। सम्राट् और सम्राज्ञी सिंहासन-भवन में एक तरफ़ खड़े हो गये और हम लोग अभिवादन करते हुए सामने से निकल गये। सब लोग अभिवादन कर चुके, तब सम्राट् और सम्राज्ञी ने चुने हुए लोगों को बुला-बुलाके बातें करना शुरू किया। पहले हैदराबाद का मंत्री, फिर मैसूर, फिर बड़ौदे का मंत्री। इसके बाद गांधीजी बुलाये गये। खड़े-खड़े क़रीब सात मिनिट बातें हुई।

बातचीत में प्रधान भाग सम्राट् का ही था। गांधीजी हँसते जाते थे, बोले बहुत कम। सारांश सुनने में यह आया :

सम्राट् ने कहा कि "मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ। जब मैं युवराज की हैसियत से दक्षिण अफ्रीका गया था, तब आपने भारतीय प्रजा की ओर से मुझे सम्मानपत्र प्रदान किया था। जुलू-संग्राम में भी आपने सहायता पहुँचाई। उसके बाद महासमर में आपने और आपकी धर्मपत्नी ने बड़ी सहायता की। अफसोस की बात है कि उसके बाद आपका रुख बदल गया और आपने सत्याग्रह इख्तियार किया। आप जानते हैं कि सरकार के लिए अपनी हुकूमत कायम रखना जरूरी है—शासन तो आखिर करना ही पड़ता है।" गांधीजी ने कहा कि, श्रीमान् के पास इतना समय नहीं और मैं प्रत्युत्तर देना भी नहीं चाहता। सम्राट् ने कहा, ठीक है, किन्तु शासन तो करना ही पड़ता है। फिर उन्होंने बंगाल की बमबाजी का जिक्र किया और कहा कि यह बहुत बुरी चीज है, इससे कोई लाभ नहीं हो सकता। गांधीजी ने कहा कि मैं उसे रोकने की भरपूर चेष्टा करता रहता हूँ। फिर सम्राट् ने पूछा—मैंने सुना है

कि आप बच्चों को खूब प्यार करते हैं, यह सच है ? गांधीजी ने कहा कि मैं बच्चों के बीच ही रहता हूँ।

गांधीजी का सम्राट् से मिलना राष्ट्रीयता की विजय है। यह पहला मौका है कि इस तरह एक अर्द्धनग्न मनुष्य और साथ में महादेवभाई गांधी टोपी पहने सम्राट् से मिले। साथ ही, इससे अंग्रेज़-जाति की भी एक ख़ूबी का पता चलता है। अंग्रेज़ बनिये हैं, स्वभाव से ही संग्रामप्रिय नहीं। प्रिन्स ऑव् वेल्स की गांधीजी ने 'अवज्ञा' की, तो भी सम्राट् उनसे सौजन्यपूर्वक मिले। राजपूतों के इतिहास में और ही प्रकार के उदाहरण मिलेंगे। महाराणा उदयपुर ने अलवर-नरेश को कभी "महाराज" कहके सम्बोधित नहीं किया। "अलवर ठाकुर साहब" ही कहते रहे। अंग्रेज़ सरकार ने तोपों की सलामी दी—हिज़ हाइनेस तक कहा—मरते समय महाराज जयपुर ने ढिलाई कर दी—मगर राणा अकड़े ही रहे।

'नानक' नन्हे ह्वै रहो जैसे नन्ही दूब।
घास-पात जल जायेंगे—दूब खूब की खूब॥

: ३३ :

१२ नवम्बर, '३१

लन्दन

हिन्दू-मुस्लिम-समस्या में कोई फेर नहीं पड़ा है ! गांधीजी तो इस सम्बन्ध में बातें करने से भी इन्कार कर देते हैं। कोई बातें करने आता है, तो कह देते हैं कि मेरे समय की बर्बादी न कीजिए। मुसलमानों ने चाहा भी कि फिर बात छेड़ें; किन्तु गांधीजी ने कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। बात यह है कि मुसलमान और सिक्खों को छोड़कर बाकी अंग्रेज़, ईसाई, अधगोरे, अछूत, ज़मींदार; व्यापारी और मज़दूर इनमें किसीको भी वह अलग'कुर्सी' नहीं देना चाहते। मुसलमान दिखाने को तो अछूतों का पक्ष करते हैं, किन्तु असल में अंग्रेज़ों को "कुर्सी" न मिले, यह कहने की किसीकी भी हिम्मत नहीं है। कोई अछूतों की सिफारिश करने आता है, तो महात्माजी गरम हो जाते हैं। और कह देते हैं कि तुमको अछूतों की क्या ख़बर ! अछूतों का मुखिया तो मैं हूँ।

मुसलमान ५१ के बजाय ५० भी लेने को तैयार हैं, ऐसी हवा आती है। महात्माजी कहते हैं कि "५१ ही लो; किन्तु और किसीको कुछ नहीं मिलेगा। मैं भारतवर्ष का बँटवारा करने नहीं आया हूँ। मुसलमानों और सिक्खों को किसी तरह मैंने बरदाश्त कर लिया। अब और ज्यादा गुंजाइश नहीं है।" मजा यह है कि पाँच हिन्दू एक स्वर से अछूतों को सीट दिलाने के पक्ष में हैं और अलग मताधिकार भी। गोया हिन्दू-जाति का बँटवारा हो रहा हो। गत रविवार को आक्सफोर्ड में महात्माजी, लार्ड लोथियन, मैकडानल्ड का बेटा, और इर्विन के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए। महात्माजी ने यह स्कीम दी कि सच्चा प्रान्तीय स्वराज तो शीघ्र स्थापित कर दिया जाये। केन्द्रीय स्वराज का विधान चाहे तैयार न हो; किन्तु रूप-रेखा अभी से घोषित कर दी जाये। प्रान्तीय परिषदों का नया चुनाव हो। और उन चुनिन्दा लोगों में से प्रान्तीय परिषदें अपने प्रतिनिधि नई गोलमेज परिषद् के लिए मनोनीत करें और वह नई गोलमेज परिषद् केन्द्रीय स्वराज के लिए घोषित रूप-रेखा के अनुसार नया विधान तैयार करे। सप्रू वगैरा इससे बड़ी घबड़ाहट में पड़े हैं।

इसलिए कि सरकार नामधारी स्वराज देकर केन्द्रीय स्वराज को ढील में डाल सकती है। उनकी यह आशंका सही भी है; क्योंकि सरकार की नीति भी कुछ ऐसी ही है। और अब उन्हें गांधीजी का सहारा मिल गया। किन्तु गांधीजी कहते हैं कि "यदि वे आगे न बढ़े तो मुझे क्या डर है। मैं उनसे अच्छी तरह लड़ लूंगा। तुम लोगों में आत्मविश्वास नहीं है, इसलिए तुम लोग ऐसी बातें करते हो।" गांधीजी इस गोलमेज़ परिषद् से उकता गये हैं। यह परिषद् एक तरह से बावन भेष की टोली बन गई है। लोग अपना अलग-अलग स्वर निकालते रहते हैं। हिन्दुस्तान की तो किसीको भी नहीं सूझती। आर० टी० सी० का मजमा ऐसा बन गया है, जैसे बीस बाजों में, अलग-अलग स्वर में, एक ही साथ भिन्न-भिन्न राग गाये जायें। गांधीजी की चाल में एक तरह से दूरदर्शिता है सही; किन्तु इसका फल तभी हो सकता है जबकि हम लोग अपनी ताक़त बनाये रक्खें। इस सप्ताह में होर से वर्तालाप होनेवाला था, पर वह बीमार पड़ गया। आज महात्माजी और होर के बीच वार्तालाप होगा। पंडितजी और प्रधान-मन्त्री के बीच कल बातें हुई थीं। उससे यह

आभास मिला कि केन्द्रीय स्वराज का तो केवल वादा कर देंगे और प्रान्तीय स्वराज की अभी से घोषणा करके आगामी अगस्त तक क़ानून पास करा देंगे। प्रधान-मन्त्री ने कहा कि आप लोग जब अपना झगड़ा तय नहीं कर सकते, तब हमसे क्या आशा कर सकते हैं! इर्विन ने भी पुरुषोत्तमदास से कहा कि तुम्हारे झगड़े ने तुम्हारा काम बरबाद कर दिया। यह सही है, किन्तु यह भी है कि कुछ लोग जो सरकार से खा गये हैं, अपना-अपना पक्ष ज़ोर से खींचकर समझौता नहीं होने देते। और ऐसे-ऐसे खानेवाले लोग आज नेता बने बैठे हैं। अभी एक योजना और गढ़ी जा रही है। मुसलमान, अछूत, अंग्रेज़, अधगोरे, ईसाई—आपस में एक सन्धिपत्र तैयार कर रहे हैं। किन्तु इसमें भी अंग्रेज़ अपनी शक्ति क़ायम रखना चाहते हैं, इसीसे उनके बीच भी अभी तक कोई समझौता नहीं हुआ है। मुझे तो समझौता होने की आशा भी नहीं है। हमारे प्रधान जमाल मोहम्मद साहब बेचारे ख़ूब दौड़-धूप करते हैं और अपना सौजन्य भी साबित कर दिया है। वह कहते हैं कि जिन्ना राष्ट्रवादी है, तुम्हारे पीछे मुसलमानों से ख़ूब लड़ता है। यह यहाँकी हालत है।

आज यहाँ आये क़रीब दो महीने हो गये और लोग एक तिल भी आगे नहीं बढ़े हैं। क्या होगा यह भी पता नहीं है। गोलमेज़ परिषद् का यह दो महीने का इतिहास बड़ा दर्दनाक है। हम लोग कितने निकम्मे हैं, यह लोगों ने यहाँ साबित कर दिया। ऐक्य तो है ही नहीं। सब लोग अपना-अपना मान बढ़ाने की फिक्र में हैं। इस मर्ज़ से शायद ही कोई बचा हो। गांधीजी हमारे कप्तान हैं और उन्हें सहायता पहुँचाना चाहिए, इसकी किसीको भी चिन्ता नहीं। इसका यही कारण है कि ये सब-के-सब सरकार द्वारा मनोनीत किये गये हैं। यदि प्रजा द्वारा मनोनीत किये गये होते तो यह नौबत न आती। इर्विन-गांधी समझौते के समय जो दृश्य था, वह यहाँ देखने में नहीं आता। वल्लभभाई,जवाहरलाल इत्यादि किसीने वाइसराय के घर की तरफ़ भी जाकर नहीं ताका, और सारा भार गांधीजी पर छोड़ दिया। यहाँ यह हालत है कि गांधीजी प्रधान मंत्री से मिलते हैं तो उसके बाद ही मुसलमानों के नेता आग़ा ख़ाँ से मुलाक़ात होती है। फिर अछूत नेता अम्बेडकर—सिक्ख नेता उज्जलसिंह आदि से मुलाकात होती है और नरमदल के नेता डाक्टर सप्रू से। और इन

मुलाक़ातों में सब लोग अपना अलग-अलग वक्तव्य देकर आते हैं। हमारी अनेकता ऐसी साबित हुई, जैसी पहले कभी नहीं हुई। ब्रिटिश कूटनीति की सोलहों आने विजय हुई है। सब बातें लिखने से तो अत्यन्त दुःख होता है, क्योंकि हमारे बड़े नेताओं ने भी यहाँ अपने सम्मान के मोह-जाल में फँसकर एकता को कैसे नष्ट कर दिया है इसका दुखदायी प्रदर्शन मिलता है। भविष्य में जब कभी समझौते की बात उठे तो पहली शर्त तो यह हो कि जो लोग मनोनीत हों, वे प्रजा द्वारा निर्वाचित हों—जिससे कम-से-कम, कांग्रेस का बहुमत आजावे और निर्वाचित लोग एक डोर में बँधे हुए हों। यहाँ तो यह हालत है कि नाइयो की बारात मे सभी ठाकुर।

आर्थिक प्रश्नों के सम्बन्ध में बेन्थल और हम लोग के बीच टूटी-फूटी बातें चली आ रही हैं। अभी तक बैंक ऑव इङ्गलैंड के परिचालिकों से कोई वार्तालाप नहीं हुआ; किन्तु बेन्थल और कैटो ने सूचना दी है कि यहाँ के सेठ लोग हमारे आर्थिक क्षेत्र पर कोई अधिकार नहीं चाहते, बशर्ते कि हम उनसे रुपया उधार माँगने को न आयें।

: २४ :

१२ नवम्बर, '३१

लन्दन

कल होर से गांधीजी मिले। परिस्थिति बिलकुल स्पष्ट हो गई। प्रान्तीय-स्वराज को छोड़ और कुछ मिलनेवाला नहीं है। होर ने कहा कि बाकी बातों की जाँच-पड़ताल की जायेगी, फिर निश्चय किया जायेगा कि क्या करना चाहिए। गांधीजी ने कहा—इसका यह भी अर्थ हो सकता है कि जाँच-पड़ताल में २-३ साल लग जायें। उनसे कहा—हाँ, हो सकता है। गांधीजी बोले—और संभव है, अन्त में यह निश्चय हो कि कुछ भी न दिया जाय। उसने यह संभावना भी स्वीकार की। सो इस आर० टी० सी० का नतीजा यह निकला! गांधीजी ने कहा—"बहुत खूब। हम एक दूसरे मित्रता रखते से हुए ही अलग हों—यही मेरी आन्तरिक इच्छा है।" गांधीजी बहुत शीघ्र यहाँ से प्रस्थान करनेवाले हैं—कहा जाता है, एक सप्ताह भीतर ही। तैयारी शुरू कर दी है।

आज अल्पसंख्यक-दल-परिषद् की बैठक थी। प्रधान-मन्त्री ने कहा कि अगर इस प्रश्न का निर्णय मुझपर छोड़ना है, तो बाक़ायदा अपनी-अपनी स्वीकृति मुझे दे दो। उसने यह भी कहा कि विधान-निर्माण-परिषद की बैठक अगले सप्ताह होगी। यह किसलिए? जब केन्द्रीय स्वराज की सम्भावना ही नहीं, तब इस परिषद् का काम ही क्या है? कुछ लोगों को इससे आशा होती है कि होर ने जो कुछ कहा वह अन्तिम शब्द नहीं है—या कम-से-कम परिस्थिति उतनी निराशाजनक नहीं है। पर वास्तव में आशा के लिए गुञ्जाइश बहुत कम—शायद नहीं के बराबर—रह गई है। गत मई महीने में विलिङ्गडन ने सप्रू और जयकर से कुछ ऐसी ही बातें की थीं। कहा था कि फिलहाल प्रान्तीय स्वराज मिल जाये तो क्या बुरा है? जो बात इतने दिनों से दिल में थी, वह अब निकलने लगी है।

अब इर्विन भी कह रहा है कि बात मेरे बस की नहीं—लोग यह कह रहे हैं कि जब बायकॉट बन्द नहीं हुआ, तब तुम्हारे और गांधी के बीच के समझौते का मूल्य क्या समझा जाये?

अल्पसंख्यक दलों के बीच जिस समझौते की

चर्चा थी उसका मसविदा निकल गया। इसमें सिक्ख शामिल नहीं हैं। हिन्दुस्तानी इसाइयों के यहाँ जो दो प्रतिनिधि हैं उनमें डा० दत्त ने न तो इस बातचीत में ही कोई भाग लिया है न इसमें शरीक ही हुए हैं। इस समझौते में ऐसी बातें ज़रूर हैं, जिन पर आपत्ति की जा सकती है। पर यह कैसे मान लिया जाये कि इसमें काट-छाँट की गुञ्जाइश नहीं है? भिन्न-भिन्न दलों के जो नेता बनकर यहाँ आये हैं उनके लिए यह कलङ्क की बात रहेगी कि ऐसे महत्वपूर्ण अवसर पर भी वह अपनी संकीर्णता की तङ्ग गलियों को छोड़कर राष्ट्रीयता की—एकता की—चौड़ी सड़क पर न आ सके। अफसोस! अगर विचार-पूर्वक देखा जाये तो अल्पसंख्यक दलों की संयुक्त माँग भी इतनी भयङ्कर नहीं है कि आपस में समझौता होने की आशा ही त्याग दी जाये। यूरोपियन जितनी कुर्सियाँ माँगते हैं उतनी उन्हें नहीं मिल सकतीं। पर वह भी जानते हैं कि वह इससे कम के हकदार हैं और कुछ कम कर देने पर भी वह सन्तुष्ट हो जायेंगे। अछूतों से यह समझौता होना असम्भव नहीं दीखता कि तुम्हें इतनी कुर्सियाँ दे दी जायेंगी, पर तुम्हें संयुक्त निर्वाचन स्वीकार करना होगा। ईसाई, ऐंग्लो-इण्डियन

को भी कुछ-न-कुछ देना ही होगा। सवाल पंजाब और बंगाल का रह जाता है। अगर घड़ीभर के लिए मान लिया जाये कि मुसलमानों को ५१ फ़ीसदी मिल गया तो आखिर इससे क्या हो जायगा ? प्रलय उपस्थित हो जायेगा ? ५०-५० पर समझौता हो सकता है। अगर यह कहा जाय कि मुसलमान और अंग्रेज़ मिलकर हर हालत में हिन्दू-सिक्ख से अधिक रहेंगे तो इसके ख़िलाफ़ यह दलील भी है कि मुसलमानों के सारे वोट एक ही ओर पड़ेंगे, यह मान लेने की कोई वजह नहीं है। राजनीतिज्ञता, दूरदर्शिता—इन गुणों को अपने शासकों में देखने की हमारे नेता प्रायः इच्छा प्रकट किया करते हैं। कम-से-कम इस मौक़े पर इन्हें भी तो इन गुणों का परिचय देना चाहिए था। भारतवर्ष-जैसे देश का भविष्य गढ़ने चले हैं, अपना-अपना हठ, दुराग्रह, तअस्सुब, तंगदिली घड़ी भर के लिए भी छोड़ने को तैयार नहीं हैं।

ब्रिटिश कूटनीति के लिए हमारे इन नेताओं ने सारा मार्ग बहुत ही सुगम और परिष्कृत कर दिया। अगर हमारी एकता होती तो उसकी ऐसी पूरी विजय कभी न होती। जिन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर ब्रिटिश सरकार से, ब्रिटिश पूँजीपतियों से दरअसल बातचीत

करने के लिए यहाँ गाँधीजी की जरूरत थी, उनकी तो उनसे चर्चा ही नहीं की गयी। अपने शत्रुओं को यह जीत बहुत ही सस्ते दामों मिली।

: ३५ :

१६ नवम्बर, '३१

लन्दन

आशा की लता मुरझाकर फिर कुछ हरी हो चली है। अंग्रेज व्यापारी दौड़-धूप करने लगे हैं, अधिकारियों की ओर से भी चेष्टा हो रही है कि बातचीत का सिलसिला जारी रहे। कान्फ्रेन्स तोड़ देना आसान काम है—पर सभी समझते हैं कि इसका नतीजा क्या होगा। जो बातचीत चल रही है, उसमें हमारे शत्रुओं की ओर कितनी सचाई है, कहना कठिन है। कान्फ्रेन्स टूटने की संभावना से वे कुछ लज्जित हुए हैं—कुछ भयभीत भी। शीघ्र ही स्पष्ट हो जायेगा कि बातचीत आगे बढ़ाने में उनका वास्तविक उद्देश क्या था।

बेन्थल कल आप-ही-आप मुझसे मिलने आया। कुछ चिन्तित-सा था। कहा कि फसाद की जड़ होर है, वही विरोध कर रहा है; पर हमने अपने दल की ओर से उसे लिखा है कि अगर कान्फ्रेंस टूट गयी—

उसका उद्देश सिद्ध न हुआ—तो इसका परिणाम भयङ्कर होगा और हम लोग भी उसके लिए तैयार नहीं है। बेन्थल का कहना है कि मन्त्रिमंडल में होर प्रभावशाली जरूर, है, पर उसकी चलेगी नहीं। मैंने कहा कि तुम लोगों ने मुसलमानों और अछूतों के प्रतिनिधियों से इक़रारनामा करके समस्या और भी जटिल कर दी है। उसने कहा कि हम लोगों ने कोई इक़रारनामा नहीं किया है। हमने तो एक तरह से दरख्वास्त की है कि हमारा यह हक है—हमें शासन-विधान में यह अधिकार मिलना चाहिए। जब मैंने कहा कि तुम लोगों को प्रतिनिधित्व का अधिकार दूसरे ढंग से भी मिल सकता है तब उसने कहा कि मुझे इसका रास्ता बताओ, हमलोग उसपर विचार करेंगे। मैंने कहा कि तुम पहले मुसलमानों को इस बात के लिए राज़ी करो कि हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख प्रश्न को वे प्रधान-मन्त्री पर छोड़ दें। उसने कहा कि मुसलमान औरों को छोड़कर निपटारा कराने को कभी तैयार न होंगे। अन्त में यह तय हुआ कि बेन्थल और कार मेरे यहाँ महात्माजी से मिलें। रात को ६॥ बजे सब मिले। महात्माजी ने अंग्रेजों को कुर्सियां देने से साफ इन्कार किया। मैंने बहुत समझाया-बुझाया, पर वह

टस-से-मस न हुए। मेरी राय है कि अगर समझौता हो सकता है तो इनको कुर्सियाँ देकर भी कर लेना चाहिए, जिससे इनके द्वारा अपनेको सहायता मिल सके। पर महात्माजी का मत और है। वह आपस में समझौता करके यह तय कर देना चाहते हैं कि अमुक प्रान्त में अंग्रेजों को—संयुक्त निर्वाचन से—इतनी कुर्सियाँ मिला करें—कानूनन ऐसा होने देना उन्हें मंजूर नहीं। वह कहते हैं कि कांग्रेस लिखकर दे देगी और अंग्रेजों को उसके क़ौल-करार पर ही रहना होगा। बेन्थल ने कहा कि बंगाल में जो लोग हमारे खून के प्यासे हो रहे हैं, वे हमारे साथ ऐसी सहानुभूति कब दिखायेंगे, हमारे साथ ऐसा न्याय कब करेंगे? पर महात्माजी अन्ततक यही कहते रहे कि हम अंग्रेजों के साथ न्याय करना ज़रूर चाहते हैं, पर हमारे बीच जो कुछ समझौता होगा, वह क़ानून के घेरे के बाहर। महात्माजी का मौन-दिवस था, इसलिए वह राय कागज पर लिख कर ही जाहिर करते रहे। आज रात को फिर बातें होंगी। मुझे आशा नहीं होती कि अंग्रेजों को महात्मा-जी की बात कभी मंजूर होगी।

कैटो भी दौड़-धूप कर रहा है। उसका लार्ड रीडिङ्ग पर काफ़ी प्रभाव है और उसने इनसे कहा

कि यह क्या वाहियात काम हो रहा है! बात यह है कि सत्याग्रह की संभावना ने सबको गहरी चिन्ता में डाल दिया। व्यापारियों को अपने व्यापर की फ़िक्र है और वह जानते हैं कि अगर भारतवर्ष ने फिर उस राह पर क़दम रक्खा, तो उनका व्यापार चौपट हो जायेग। उनकी बातों का यहाँके अधिकारियों पर भी प्रभाव पड़ा है। कल होर ने महात्माजी को बुलाकर उन्हें समझाना चाहा कि उसकी स्कीम को उन्होंने पूरा नहीं समझा है—अर्थात् वह प्रान्तीय स्वराज तक ही परिमित नहीं है। विधान-परिषद् में भी कुछ आशाजनक भाषण हुए। प्रधान-मन्त्री ने तो सप्रू को लिखा है कि मैं कभी विश्वासघात न करूँगा, और मेरी न चली तो मैं इस्तीफा दे दूँगा।

इधर जनरल स्मट्स भी इस मामले में दिलचस्पी लेने लगे हैं। उसका महात्माजी का पुराना परिचय है। परिचय ही नहीं, दोनों का दक्षिण अफ्रीका में काफी सम्बन्ध रहा है। स्मट्स की अन्तर्राष्ट्रीय संसार में अच्छी ख्याति है। आयर्लैण्ड के साथ जो सन्धि हुई थी, उसमें इसने ख़ासा भाग लिया था। जब बातों-चात महात्माजी ने उससे कहा कि मैं ख़ाली हाथ

लौटनेवाला हूँ, तब वह बोला कि "इसपर कौन यक़ीन कर सकता है कि तुम्हें ये लोग खाली हाथ लौटने देंगे ? तुम भारत के हृदय-सम्राट् हो—इन्हें यह तो मालूम होना चाहिए कि तुम्हारे ख़ाली हाथ लौटने का वहाँ क्या नतीजा होगा।" फिर उसने हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न की चर्चा की। महात्माजी ने कहा कि फ़िलहाल और कुछ नहीं तो लखनऊ का समझौता तो है। उन्होंने इस प्रश्न को हल करने का रास्ता भी बताया। स्मट्स उनका प्रस्ताव लेकर प्रधान-मन्त्री के पास गया और दूसरे समय महात्माजी से रिज होटेल में, जहाँ वह मुसलमानों से बातें करने लगे थे, मिला। उसने कहा कि मैकडॉनल्ड पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा है और वह कहता था कि गांधी एक अद्भुत व्यक्ति है—उसका अभिप्राय समझना कठिन-से-कठिन काम है। स्मट्स ने कहा कि ये लोग आपको नहीं जानते, इसीसे ऐसी बातें करते हैं। पर मेरी अपनी सहानुभूति प्रधान-मन्त्री से है—मैंने महात्माजी से कहा भी कि आपकी भाषा सरल-से-सरल और साथ ही गूढ़-से-गूढ़ होती है। शायद ही कोई दावा कर सकता हो कि उसने आपका यथार्थ भाव समझ लिया ख़ैर, स्मट्स ने सहायता पहुँचाने

का वचन दिया और उससे जो कुछ हो सकता है, वह कर रहा है। हमारे सम्राट् यहाँसे प्रायः सौ मील पर सेंड्रिघम में विराजमान हैं स्मट्स वहाँ जा पहुँचा है और वहाँ से मि० एण्ड्रूज़ के नाम परवाना आया है कि आप आकर मिलें।

: ३६ :

१७ नवम्बर, '३१

लन्दन

कल रात बेन्थल और कार फिर महात्माजी से मिले। घण्टे भर तक महात्माजी उन्हें फटकारते रहे। उन लोगों ने अपनी सफ़ाई में बार-बार यह कहा कि हमारा मुसलमानों से कोई समझौता—कोई इक़रारनामा; नहीं है—हमने तो एक अर्जी-सी पेश की कि हमें इतना मिलना चाहिए। पर महात्माजी को इससे कुछ भी सन्तोष न हुआ। उन्होंने जो कुछ कहा, उसका सारांश यह है :

"तुम लोगों पर मेरा जो विश्वास था, वह उठ गया। मुसलमानों से अछूतों से—तुम लोगों ने जो समझौता कर लिया उससे मेरे दिल को ऐसा घाव लगा है, जो जल्दी भरने का नहीं। तुम कहते हो कि तुम्हारी यह हरकत मुझे बुरी लगी है। इन शब्दों से मेरा भाव पूरी तरह व्यक्त नहीं हो सकता। बुरा लगना तो एक साधारण-सी बात है—तुम्हारी करतूत

तो वह दग़ा है, जिसमें तुमने मुझे अपने खञ्जर का शिकार बनाना चाहा है। तुम्हारे पास तो सभी साधन हैं, अगर तुम्हें अपने हक़ न मिलते तो हमसे खुल्लम-खुल्ला लड़ लेते। मैं बराबर यही कहता आया कि अंग्रेजों का विश्वास करो, अब मैं किस मुहँ तुम्हारी भलमनसाहत का इजहार कर सकता हूँ? तुमने तो यह साबित कर दिया कि तुम्हारे आदर्श अभी बदले नहीं हैं—तुम ईस्ट इंडिया कम्पनी की ही राह पर चलनेवाले हो। कम्पनी ने अपना प्रभुत्व जमाने के लिए कभी इसका साथ दिया, कभी उसका—कभी इसको उससे लड़ाया कभी उसको इससे—और अन्त में सबको तंग-तबाह करके अपना साम्राज्य कायम कर लिया। तुम भी ऐसी ही भेदनीति से काम लेना चाहते हो। आज भारतवर्ष में जो जातियाँ जीवन-संग्राम में पिछड़ी हुई हैं, जिनके पास न दौलत है न दिमाग़ है, उनको अपने चुङ्गल में फँसाकर तुम सारे देश पर अपनी सत्ता क़ायम रखना चाहते हो। ग़नी-मत है कि तुम अँग्रेज़-समाज के भी प्रतिनिधि नहीं हो। मैं दावा करता हूँ कि उनका सच्चा प्रतिनिधि मैं हूँ। बम्बई के नौजवान अंग्रेज़ तुम्हारी तरह नहीं हैं। यहाँ भी मुझे एक अंग्रेज़ ऐसा नहीं मिला, जिसने

तुम्हारी तारीफ की हो। अगर तुम इस समझौते से आप-ही-आप नहीं निकल जाते, तो या तो मैं इसे चूर-चूर कर दूँगा या उसके लिए लड़ता हुआ मर मिटूँगा।"

अंग्रेजों ने कहा कि हम तो निकल गये हैं, हमारा अब उससे कोई लेना-देना नहीं है—क्योंकि हमने सब-कुछ प्रधान-मन्त्री पर छोड़ दिया है। पर गांधीजी को इन बातों से सन्तोष न हो सका।

मुसलमानों ने यह ज़ाहिर कर रक्खा था कि हम लोग विधान-परिषद् की कार्यवाही में भाग न लेंगे, पर होर के समझाने पर राज़ी हो गये और परिषद् का काम फिर जारी है। पण्डितजी सेना के सम्बन्ध में प्रायः एक घंटा बोले। पर सन्तोष न हुआ। कहते थे कि दो-तीन घंटे और बोलूँगा। जमाल मोहम्मद साहब की मुसलमानों ने बड़ी फ़ज़ीहत की है। बेचारे डर गये हैं। उस दिन गांधीजी की उपस्थिति में मुसलमानों ने उन्हें अपमानित किया। कहा कि तुम जासूस हो, इधर की बातें उधर पहुँचाते हो। इकबाल बोला कि तुम्हारे पास पैसे हो गये, तो तुम अपने आपको बहुत बड़ा आदमी समझने लगे! जमाल साहब की ज़बान कब बन्द रहनेवाली थी?

जवाब दिया कि तुम्हें काफिया मिलाना आ गया तो तुम अपने को कौम का सिरताज समझने लगे? जमाल साहब किसीसे दबनेवाले नहीं हैं। कोई हो तुर्की-ब-तुर्की जवाब दे देंगे। उनमें यह दोष है कि मर्यादा का उल्लङ्घन कर जाते हैं और वाक्‌चातुरी न होने के कारण लोगों को अकारण ही चिढ़ा देते हैं। कुछ लोग—उनके मित्रों में ही—उन्हें मग़ज़चट कहने लगे हैं। मुसलमानों की आँखों में तो वह काँटे के समान चुभते हैं।

: ३७ :

२० नवम्बर, '३१
लन्दन

इस सप्ताह महात्माजी लॉयड जार्ज से उसके घर पर मिले। लॉयड जार्ज ने कहा कि आपको सत्याग्रह करना ही पड़ेगा—बिना लड़ाई के आपको स्वराज मिलनेवाला नहीं है। उसने मैकडॉनल्ड को कमज़ोर बताया। कहा कि टोरी दल के १५० मेम्बर भी मैकडॉनल्ड का साथ देनेवाले हों, तो वह अपनी स्कीम पास करा सकता है।

मैकडॉनल्ड की कमज़ोरी की शिकायत और लोगों से भी सुनने में आयी है। इस सप्ताह लेबर-पार्टी के प्रधान मेम्बर स्मिथ और लारेन्स मेरे यहाँ खाना खाने आये थे। अगले सप्ताह वेजउड बेन और दूसरे लोग भी आनेवाले हैं। स्मिथ पिछली लेबर-मिनिस्टरी में रह चुका है, और लारेन्स अर्थ-विभाग का पार्लमेण्टरी मन्त्री था। स्मिथ से बड़ी देरतक बातें होती रहीं, वह बराबर नोट लेता गया। मैंने

उसे सारी परिस्थिति समझायी और बताया कि अगर झगड़ा चला तो खजाने में टोटा बना ही रहेगा और इंग्लैण्ड को यहाँसे पैसे भेजकर भारतवर्ष का शासन करना पड़ेगा। उसको यह बात मार्के की जँची और उसने इस सम्बन्ध में कई प्रश्न किये। अन्त में कहा कि पारसाल गांधीजी ने यहाँ न आकर गलती की। इस साल टोरी दलवाले गलती कर रहे हैं। मैकडॉनल्ड कमजोर आदमी है, वह इस प्रश्न के लिए अपना सिर देने को तैयार नहीं है।" फिर उसने पूछा—पर अगर वह इतनी हिम्मत करे तो क्या गांधीजी अपना सिर देने को तैयार होंगे? मैंने कहा कि इस प्रश्न का उत्तर तो यह देखकर ही दिया जा सकता है कि हमें मिलता क्या है? पर अगर इतना भी हो जाये कि गांधीजी विरोध न करें तो बहुत है—और यह सम्भव है कि सोलह आने के बजाय बारह आने मिलने से गांधीजी विरोध न करेंगे। स्मिथ ने कहा कि "इस मन्त्रिमण्डल से जो कुछ मिल जाये, ले लो—शीघ्र ही इसका पतन होगा और हम लोगों का फिर बोलबाला होगा। तब तुम्हें बहुत कुछ मिलने की उम्मीद रहेगी।"

: ३८ :

२७ नवम्बर, '३१

लन्दन

आज विधान-परिषद् की अन्तिम बैठक है। विधान बनने में तो न जाने अभी कितनी देर है, पर इसके नाम पर जो नाटक चल रहा था, वह अब पूरा हो चला। साथ ही बर्मा-गोलमेज़-कान्फ्रेन्स नाम का दूसरा तमाशा शुरू हो रहा है।

इस सप्ताह महात्माजी प्रधान-मंत्री से फिर मिले। उन्होंने कहा कि प्रान्तीय स्वराज मैं लेने को तैयार हूँ—बशर्ते कि वह मेरे मन की चीज़ हो। पर मेरे प्रान्तीय स्वराज में न तो बंगाल के राजनैतिक क़ैदी जेलखानों में पड़े सड़ते रहेंगे, न वहाँ फौज़ की ही कोई जरूरत रह जायेगी। महात्माजी तो मैकडॉनल्ड को मूर्ख और होर को समझदार बताते हैं। विधान परिषद् के अध्यक्ष लार्ड सैंकी का उनपर बहुत अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा है।

स्मिथ और लारेन्स से बातचीत हुई। कहते थे

"कि मामला बिगड़ गया। हिन्दू-मुस्लिम-समझौता न होने का अनुचित लाभ उठाया जा रहा है। साथ ही स्वीकार करना होगा कि इसकी गुञ्जाइश भी है।" मैंने बेन से कहा कि अगर सरकार पूरी तस्वीर हमारे सामने रख दे कि अगर तुम एक हो जाओ तो तुम्हें इतना मिल सकता है, तो समझौता आसानी से हो जाये। बेन बोला कि "इस कान्फ्रेन्स को किसी तरह जिन्दा रखना चाहिए। चाहे यह यहाँ काम करे चाहे वहाँ, मगर इसका काम जारी रहना चाहिए।"

रात को लारेन्स और बेन मेरे साथ भोजन करने आये थे। देर तक बातें होती रहीं। बेन दिल का साफ आदमी है। उसने कहा कि "इम्पीरियल प्रिफरेंस दिलाने के लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूँ। मैंने इस मामले में कुछ नहीं किया।" एक्सचेंज के बारे में उससे मालूम हुआ कि शुस्टर जब यहाँ आया था तब उसने सिफ़ारिश की थी कि १-६ छोड़ दिया जाये। पर बेन ऐसे आर्थिक प्रश्नों के सम्बन्ध में कम—बहुत कम—जानकारी रखता है, इसलिए उसने इस मामले में शुस्टर से ख़ुद बातें न कर सर हेनरी स्ट्राकोश और किश के सुपुर्द कर दिया। मैं उसको आर्थिक परिस्थिति समझाता रहा। उसने कहा कि कुछ होता-जाता

नज़र नहीं आता। मैंने कहा कि अगर मैकडॉनल्ड महात्माजी को बुलावे और दोनों की दिल खोलकर बातें हों, तो शायद कोई रास्ता निकल आवे। बेन ने कहा कि मैकडॉनल्ड ४-५ महीने से ज्यादा ठहर नहीं सकता। टोरी दलवाले उसको और बाल्डविन को दोनों को ही धता बता देंगे। उसने पूछा कि जिन लोगों ने हिन्दुस्तान में रुपया लगा रक्खा है, उनको कैसे सन्तुष्ट किया जाये ? मैंने कहा कि "कि हम न्याय से विमुख होना नहीं चाहते। पर अगर हमें सन्तोष नहीं होता तो क्रान्ति किसी के रोके रुक नहीं सकती। उस हालत में, जिन लोगों ने रुपया लगा रक्खा है, उनके लिए और भी खतरा है। हमारे ऊपर तुम्हारे क़र्ज़ का बोझ ज़रूर है, पर आखिर उसे चुकाने का रास्ता क्या है ? मानलो कि हम एक्सचेंज घटाकर अपना एक्सपोर्ट बढ़ाते हैं, उस हालत में भी तुम्हारे व्यपार को धक्का लगता है। पर असलियत तो यह है कि संसार के इतिहास में इस तरह का क़र्ज़ कभी किसी देश ने चुकाया नहीं है। बात असम्भव-सी है। तुम्हारी नीति ऐसी होनी चाहिए कि हमसे असल तो नहीं, पर सूद बराबर अदा होता जाये।" बेन ने कहा कि यहाँवालों को यह मालूम हो कि

असलियत यह है तो वह और भी सख्ती से पेश आयेंगे। मैंने कहा, "पर हमने तो स्वतन्त्र होने का संकल्प कर लिया है—हम कब चुपचाप बैठनेवाले हैं।" वेन बोला—तुम्हारा कहना ठीक है, पर व्यापारी बड़े जड़-बुद्धि होते हैं। मैंने कहा कि अगर सत्याग्रह-सग्राम फिर छिड़ा तो यह नौबत आ जायेगी कि शासन के लिए इग्लैण्ड को यहाँ से पैसे भेजने होंगे। वेन बोला—"ठीक है, पर अगर एक डिस्ट्रिक्ट अफ़सर के मनोविज्ञान को देखो, तो उससे यह आशा करना व्यर्थ है कि वह इस तर्क का क़ायल होगा। वह कभी नहीं सोच सकता कि मेरे कारनामों का यह असर होगा कि सरकार के ख़ज़ाने में टोटा रहेगा और यह बात ख़ुद मेरे हक में बुरी होगी। दुनिया अन्धी है, लोग बातों पर पूरा विचार नहीं करते—इसीसे तो इतनी ख़राबी है।"

तो हालत यह है कि कान्फ्रेंस से कुछ भी नतीजा नहीं निकला। पर यह बिल्कुल टूट गई, यह भी नहीं कहा जा सकता। बंगाल में और अन्यत्र भी दमन ख़ूब जोरशोर से होनेवाला है। साथ ही समझौते की बात भी जारी रहेगी। कैलास बाबू कहा करते थे कि अंग्रेज़ का एक हाथ पाँव पर और एक हाथ गर्दन पर

रहता है। अगर उसने देखा कि आपमें कुछ दम नहीं तो झट गला दबा देता है, पर अगर उसे मालूम हुआ कि आपसी लड़ने झगड़ने में उसे लेने-के-देने पड़ेंगे, तो उसे पॉव छूते देर नहीं लगती। उस अवस्था में वह यही कहता है कि मैं तो पहले से ही आपके पाँव चूमने को लालायित था। यही दशा कुछ समय तक रहेगी। अगर उपद्रव बढ़ा तो समझौता बहुत शीघ्र हो जायेगा, नहीं तो देने-दिलाने की बात को खटाई में डाल देंगे।

इस सप्ताह कुछ भाषण मार्के के हुए—नरम दल वाले भी जोश-ख़रोश और सरगर्मी से बोले। महात्मा-जी ने कहा कि गोले-बारूद से हम डरनेवाले नहीं हैं; हमारे बच्चे भी उन्हें पटाख़े समझने लगे हैं। सप्रू, जयकर शास्त्री,मुदलियार—सबने एक स्वर से प्रान्तीय स्वराज से आगे न बढ़ने का विरोध किया। मुसलमानों की ओर से भी कहा गया कि यह पर्याप्त न होगा। मुदलियार मद्रास प्रान्त के अब्राह्मण दल का प्रति-निधि है। बहुत समझदार आदमी जान पड़ता है। लार्ड सैंकी तो कल आपे से बाहर हो गया। बेन को बच्चे की तरह डॉटकर कहा कि ज़बान मत खोलो। जब बेन न माना, तब कहने लगा कि यह हालत रही

तो मै कुर्सी छोड़ दूँगा। दरअसल बात यह है कि इधर परिस्थिति में जो कुछ अन्तर पड़ा है, उसका श्रेय बेन और लीज़स्मिथ को ही है। सरकार की चाल को यह बख़ूबी समझते हैं और अगर ये न होते तो होर और सैकी ने कान्फ्रेंस को शायद चुपचाप दफ़ना दिया होता। सैकी का बेन से चिढ़ना स्वाभाविक है।

भाईजी का एक तार महात्माजी के नाम आया है कि आप मुसलमानों के साथ जैसा मुनासिब समझें, समझौता कर लें। गांधीजी मुझसे कहते थे कि इसका समय तो जाता रहा। मैंने कहा कि इस समय भी आपको अगर हम १५ हिन्दू लिखकर दे दें, तो आप क्यों न समझौता कर लें? महात्माजी बोले कि "जबतक मालवीयजी और डाक्टर मुंजे लिखकर नहीं दे देते, तबतक मैं नहीं कर सकता। यहाँ उनके दस्तख़त के बिना मैं कुछ नहीं कर सकता।"

: ३९ :

४ दिसम्बर, '३१

लन्दन

कान्फ्रेन्स के नाटक का आखिरी पर्दा गिर चुका। लोग एक-एक कर लन्दन छोड़ रहे हैं। महात्माजी कल प्रस्थान करते हैं। पंडितजी का प्रोग्राम अनिश्चित है। अमेरिका जाने का कुछ विचार था, मगर उन्होंने तय किया है कि एक सप्ताह यहाँ और बिताकर इटली होते हुए हिन्दुस्तान जायेंगे।

पूरी कान्फ्रेन्स शनिवार, सोमवार, मंगलवार तीन दिन बैठी। पहले दिन की कान्फ्रेन्स में एक भी उल्लेखनीय बात नहीं हुई। दोस्त-दुश्मन सभी एक ही भाषण सुनने को उत्सुक थे और वह भाषण सोमवार को—मौन टूटने पर—होनेवाला था। दोनों दिन अधिवेशन साढ़े दस बजे दिन को आरम्भ हुआ, पर सोमवार की कार्यवाही २॥ बजे रात को पूरी हुई। शास्त्री-जैसे सुवक्ता भी भ्रम में पड़ गये और थोड़ी देर के लिए यह भूल गये कि दूसरा

दिन शुरू हो चुका। उनके मुहँ से भी 'आज' की जगह 'कल' निकल ही गया। सोमवार को पहले तो १०॥ से ७॥ बजे तक, फिर ६॥ से प्रायः २। तक कान्फ्रेन्स बैठी। मन्त्रिमण्डल को प्रधान-मन्त्री द्वारा होनेवाले वक्तव्य पर विचार करना था, इसलिए मैकडॉनल्ड और होर को ५ बजे ही उठकर जाना पड़ा। फिर रात की बैठक में आये; बल्कि प्रधान-मन्त्री की प्रार्थना से कान्फ्रेन्स कुछ देर के लिए स्थगित की गयी। बात यह थी कि गांधीजी का भाषण होनेवाला था और प्रधान-मंत्री के पहुँचने में कुछ मिनिटों की देर थी, पर वह उसे पूरा-का-पूरा सुनना चाहता था। गांधीजी का भाषण लाजवाब हुआ। ऐसे मौकों पर उनकी एक-एक बात मर्मस्पर्शी हुआ करती है। सन्नाटा छा रहा था और सारी सभा चित्रित-सी जान पड़ती थी। प्रायः ७० मिनिट-तक बोलते रहे। उनके बाद पंडितजी उठे। मुझे नींद सताने लगी थी और सिर में चक्कर आ रहे थे। इसलिए बीच ही में उठकर चला आया। दूसरे दिन पंडितजी कहते थे कि गांधीजी के वैसे भाषण के बाद कुछ कहना बाकी नहीं रह गया था—कुछ बोलने की इच्छा भी नहीं थी—पर नाम दे चुका

थी, इसलिए कुछ कहना ही पड़ा। यह भी सुना कि अन्तिम भाषण शास्त्री का था और वह अत्यन्त निन्दनीय था। लोगों को बहुत बुरा लगा—मुझे जो कुछ कहना था, आज रात का अधिवेशन आरम्भ होने के कुछ ही समय बाद कह चुका था। मैं समझता हूँ कि मैंने ही यह कहने का साहस या दुस्साहस किया कि कान्फ्रेन्स को किसी प्रकार की सफलता प्राप्त नहीं हुई—इसमें आगे बढ़ना तो दरकिनार हम और पीछे हट गये। कान्फ्रेंस के पुजारियों को यह बेसुरा लगा। कुछ तो बेतरह चिढ़े। पर दूसरों से—खासकर गांधीजी से—मुझे बधाइयाँ मिलीं। दुश्मन के दल में से भी एकाध अंग्रेज़ बधाई दे गये। पर लेबर-पार्टीवाले परिचित होते हुए भी खामोश रहे। मेरा मुख्य विषय यह था कि जबतक हमारा बोझ हलका नहीं किया जाता—और इसके लिए काफी गुंजाइश है, क्योंकि इंग्लैण्ड हमारे साथ बराबर अन्याय करता आया है—तबतक संरक्षणों का बन्धन ढीला या बर्दाश्त करने लायक़ हो ही नहीं सकता।

दूसरे दिन की बैठक ११॥ बजे शुरू हुई। अच्छी भीड़ थी, पत्र-प्रतिनिधियों को भी बैठने की इजाज़त मिल गयी थी। गांधीजी को प्रधान-मन्त्री को धन्यवाद

देने का काम सौंपा गया। यह उन्हें बड़ा ही अच्छा मौका मिला, और उन्होंने उसके वक्तव्य के सम्बन्ध में अपना भाव बड़ी खूबी से प्रकट कर दिया। जिस समय गांधीजी अपना रुख जाहिर कर रहे थे उस समय कुछ मेंबरों की हालत देखते ही बनती थी। सभा-भंग होने पर पण्डितजी के दफ्तर—११ किंग स्ट्रीट—में बहुत-से लोग इकट्ठे हुए। गांधीजी भी थे। प्रधान-मन्त्री के भाषण समीक्षा-परीक्षा होने लगी। कुछ मेम्बरों की राय वही थी, जो बराबर से है—अर्थात् बहुत कुछ मिल गया। शास्त्री ने उस रात को भाषण तो निकम्मा दिया, पर उसमें ईमानदारी है, इसलिए असन्तुष्ट-सा ही था। गांधीजी के विचार में ज़रा-भी परिवर्तन नहीं हुआ। पण्डितजी डॉवा-डोल थे। मुझे यह स्पष्ट दीख रहा है कि वक्तव्य से कुछ बनने-बिगड़नेवाला नहीं है। सब कुछ इस बात पर निर्भर होगा कि कांग्रेस की लड़ने की शक्ति कितनी है।

होर से जब गांधीजी पीछे मिले तब उसने उनसे कहा कि "मै तुम्हारी मित्रता चाहता हूँ। बंगाल आर्डिनेंस के लिए मैं ज़िम्मेदार नहीं हूँ—मैं उसे पसन्द भी नहीं करता; पर मुझे लाचार होकर मंजूरी

देनी पड़ी। तुम वहाँ जाकर परिस्थिति सँभालने की कोशिश करो। नये गवर्नर के सम्बन्ध में जो बातें कही जा रही हैं, वे निराधार हैं। वह बहुत अच्छा आदमी है।" सबसे बड़ी बात होर ने यह कही कि संरक्षणों के विषय में यहाँ जो कुछ तय हुआ है वह आखिरी फैसला नहीं है—सारा प्रश्न विचार के लिए खुला हुआ है।" यह सन्तोषजनक है। होर ने महात्माजी से यह भी कहा कि हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न को किसी तरह आपस में हल कर लो—बहुत कुछ उसीपर निर्भर है।

लार्ड लोथियन ने महात्माजी से कहा कि लड़ने से तुम्हारा भला जरूर है, पर ऐसी लड़ाई न करना कि हमारा सत्यानाश हो जाये। गांधीजी ने कहा, मैं इसका ध्यान रखूंगा। उसने कहा कि "माडरेटों के लिए हमारे दिल में कोई इज्जत नहीं है। हमें तो तीन से समझौता करना है—तुमसे, मुसलमानों से और अ-ब्राह्मणदल के नेता पात्रो से।" गांधीजी ने कहा कि "दो की बात तो ठीक है—मगर पात्रों से समझौता करने की बात निस्सार है, इसे छोड़ो।"

रोड्स कहता था कि बिड़ला! जब तुम्हें कभी नौकरी करने की जरूरत हो तो सर हेनरी स्ट्राकोश

के पास जाना, वह बड़ा अच्छा सर्टिफ़िकेट देगा। मैंने पूछा कि मेरे विषय में क्या कहता था ? रोड्स बोला, मुझसे मत पूछो। तुम अपनी प्रशंसा सुनकर असमंजस में पड़ जाओगे !"

परिचय

रामेश्वर—श्री रामेश्वरदास बिडला (लेखक के बड़े भाई)

ब्रजमोहन—श्री ब्रजमोहन बिडला (लेखक के छोटे भाई)

महादेव—श्री महादेव देशाई

देवदास—श्री देवदास गांधी (महात्मा गांधी के सबसे छोटे पुत्र)

गोविन्दजी—श्री गोविन्द मालवीय (पं० मदनमोहन मालवीय के छोटे पुत्र)

पारसनाथजी—श्री पारसनाथ सिंह (लेखक के सेक्रेटरी)

मिस लेस्टर—कुमारी म्यूरियल लेस्टर (लेखिका, समाज-सेविका)

एमर्सन—(सर) एच० डब्ल्यू एमर्सन (उस समय होम सेक्रेटरी थे, बाद मे पंजाब के गवर्नर हुए)

क्लार्क—सर रेजीनाल्ड क्लार्क (कलकत्ते के भूतपूर्व पुलिस कमिश्नर, व्यवसायी)

शुष्टर—सर जार्ज शुष्टर (भारत-सरकार के तत्कालीन अर्थ-सदस्य)

अटल—पंडित अमरनाथ अटल (जयपुर दरबार के अर्थ-मंत्री और प्रतिनिधि)

लोथियन—स्व० लार्ड लोथियन (अमेरिका मे ब्रिटिश राजदूत थे, भारतीय राजनीति के अच्छे ज्ञाता)

बेन—श्री वेजवुड बेन (मजूर-मन्त्रिमण्डल मे भारत-मत्री, पार्लमेण्ट के पुराने सदस्य, सुलेखक तथा सुवक्ता)

स्ट्राकोश—सर हेनरी स्ट्राकोश (अर्थ-शास्त्री, भारत-मत्री के सलाहकार, व्यवसायी)

बेन्थल—सर एडवर्ड बेन्थल (कलकत्ते की बर्ड कम्पनी के 'बडे साहब', ब्रिटिश व्यापारियो के प्रतिनिधि)

इंचकेप—लार्ड इचकेप (किसी ज़माने में कलकत्ते के मि० जैम्स मैके, पी० एण्ड ओ० नामक जगत्प्रसिद्ध जहाज़ी कम्पनी के सर्वेसर्वा)

कार—सर ह्यूबर्ट कार (बेन्थल के साथ भारत के ब्रिटिश व्यापारियो के प्रतिनिधि)

कैंटो—लॉर्ड कैंटो (कलकत्ते की एण्ड्रू यूल कम्पनी से सम्बन्ध रखनेवाले प्रसिद्ध अग्रेज व्यवसायी)

के० टी० शाह तथा प्रो० जोशी—बबई के अर्थशास्त्री

रंगास्वामी अय्यंगार—(अब स्वर्गीय) मद्रास के "हिन्दू" नामक पत्र के सम्पादक)

ब्लैकेट—सर बेसिल ब्लैकेट (शुष्टर से पहले भारत-सरकार के अर्थ-सदस्य)

हर्बर्ट सैमुअल—सर हर्बर्ट सैमुअल जिन्हे बाद मे लार्ड की उपाधि मिली। (प्रसिद्ध यहूदी विद्वान् और राजनीतिज्ञ)

शफी—सर मुहम्मद शफी (पजाब के मुस्लिम नेता जो भारत-सरकार के सदस्य रह चुके थे)

कार्बेट—सर ज्योफ्रे कॉर्बेट (सिविलियन जो आर० टी०

संयुक्त मंत्री थे)

नरेन्द्रनाथ—राजा नरेन्द्रनाथ (भूतपूर्व सरकारी कर्मचारी, पंजाब हिन्दू महासभा के नेता)

किश—मि. सी. एच किश (इंडिया आफिस के अर्थ-मंत्री)

डा० दत्त—डा० एस० के० दत्त (पंजाब के प्रसिद्ध ईसाई अध्यापक और नेता)

इक़बाल—स्वर्गीय सर मुहम्मद इकबाल (महाकवि)

स्मिथ—प्रो० लीज स्मिथ (पार्लमेण्ट के लेबर-मेम्बर, अर्थशास्त्री)

लारेन्स—मि० पेथिक लारेंस (पार्लमेण्ट के लेबर-मेंबर, अर्थशास्त्री)

कैलास बाबू—सर कैलासचन्द्र बोस (किसी ज़माने में कलकत्ते के सुप्रसिद्ध डाक्टर)

मुदलियार—सर रामस्वामी मुदलियार (इस समय भारत-सरकार के व्यापार-सदस्य, पहले मद्रास की 'जस्टिस पार्टी' के एक नेता)

भाईजी—श्री जुगलकिशोर बिडला

पात्रो—सर परशुराम पात्रो (मद्रास में कांग्रेस-विरोधी दल के एक नेता

रोड्स—सर कैम्पबैल रोड्स (किसी ज़माने में कलकत्ते के एक 'बडे साहब', डायरी-लेखक के साथ इंडियन फिस्कल कमीशन के सदस्य)